परम पूज्य श्री 108 एलाचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज के
२२वें दीक्षा जयन्ती उत्सव के पावन पुनीत अवसर पर प्रकाशित

पं० पूर्णमल्ल जी कृत

चित्रसेन पद्मावती चरित्र

• सम्पादक •

एलाचार्य वसुनन्दी मुनि

प्रस्तुति : निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला

संस्करण : प्रथम - 1200 प्रतियाँ सन् 2002
द्वितीय - 1500 प्रतियाँ सन् 2010
@ सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन

ग्रंथ : चित्रसेन पद्मावती चरित्र
ग्रंथ प्रणेता : पं० पूर्णमल्ल जी कृत
पावन आशीष : प. पू. सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री विद्यानन्द जी महाराज
सम्पादक : एलाचार्य वसुनन्दी मुनि
प्रकाशक : निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला समिति (पंजीकृत), दिल्ली
मूल्य : स्वाध्याय
ग्रंथ प्राप्ति स्थान : निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला, शाखा श्री दि. जैन ऋषभदेव मंदिर,
ऋषभपुरी, टूण्डला चौराहा, टूण्डला-जिला फिरोजाबाद (उ.प्र.)
मुद्रक : अनिल कुमार जैन
चन्द्रा कॉपी हाउस प्रा० लि०
14/10 हॉस्पीटल रोड,
आगरा (उ०प्र०) फोन: 2463195

सम्पादकीय

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्त होता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुड़ी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करें तो। जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं, निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं–

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खाणं॥17॥द. पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्व दुखों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी पात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति, प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है, उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमशः जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता पूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है। तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते हैं अतः जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य हैं। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिव कोटि महाराज कहते हैं –

पद मक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिदिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा ॥ (मूलाराधना)

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अत: कोई भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है "उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ" का वर्णन है। एवं कर्म सिद्वान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया है। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति , रत्नत्रय में अनुरक्ति की भावना जागृत होती हैं। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं –

प्रथमानुयोग मर्थाख्यानं चरितं पुराण मपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥43॥ र. श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय – सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि– निर्विकल्प ध्यान की अवस्था (जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है। अर्थात् असम्भव है) का खजाना है ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक है अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के करणों एवं त्रिलोक संबधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा करते ही हैं वे अपने जीवन के साथ खिलवाड़ तो करते हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अत: मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्त उन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकता है अत: यथाशक्ति नित्य विनयपूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुन: प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बड़े-ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं। तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं अधिकांशत: एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे हैं अत: प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं, तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही हैं। अत: गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

"अलमति विस्तरेण"

कश्चिदल्पज्ञ श्रमण: जिन चरण चञ्चरीक
टूंडला (फिरोजाबाद)
03/12/2000

परम पूज्य एलाचार्य श्री 108 वसुनन्दी
जी महाराज के 22वें दीक्षा दिवस
महोत्सव के पुनीत अवसर पर प्रकाशित

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

चित्रसेन पद्मावती चरित्र

पुण्यार्जक श्रावक

श्रीमती गीता जैन

ध.प. श्री अनिल कुमार जैन (अखबार वाले)

कम्मूआन मोहल्ला, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

द्वारा सादर समर्पित

चाहे भले ही मिले न भोजन, नहिं मिले पीने पानी।
वसन, सदन न मिले भले ही, नहि श्रवण गम्य हो मधु वाणी॥
ज्यों नीर-क्षीर का भेद बताती, त्यों देह जीव का ज्ञान सखे।
औषधि सम निरोगी बनाती, वरदा माता कल्याणी॥

प्रस्तावना

-एलाचार्य वसुनन्दी जी मुनिराज

प्रस्तुत ग्रंथ **'चित्रसेन पद्मावती चरित्र'** के नाम से जाना जाता है। यह अल्पाक्षरी ग्रंथ अपने आप में अनेक विशेषताओं को समाये हुये है। इस ग्रंथ के प्रमुख नायक कलिंग देशस्थ वसंतपुर नगर के राजा वीरसेन एवं महारानी रत्नमाला के प्रिय पुत्र **'चित्रसेन'** एवं रत्नपुर के राजा पद्मरथ व रानी पद्मश्री की पुत्री **'पद्मावती'** हैं। ये दोनों पात्र श्री महावीर स्वामी के समकालीन माने जाते हैं किन्तु उपलब्ध साहित्य में इनका वर्णन दृष्टिगोचर नहीं हुआ। हो सकता है जिन साहित्य में इनका वर्णन हो, वह मुझ छद्मस्थ के दृष्टिगोचर न हुए हों। किन्तु इतना अवश्य है कि यह ग्रंथ अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसकी कथावस्तु/आत्म कल्याणार्थी को अपनी ओर खींचने में पूर्ण समर्थ है। **इस पौराणिक कथा में प्रथमतः** आहारदान की विशेषता को बतलाकर श्रावकों को आहारदान धर्म के परिपालन के लिए प्रेरित किया गया है। आहारदान की अनुमोदना करने मात्र से ही वे हंस युगल **'चित्रसेन'** व **'पद्मावती'** हुए।

द्वितीय महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि जिस प्रकार पद्मावती को पुरुषों से विद्वेष पूर्व भव के भ्रांतिजन्य संस्कारों से हुआ ऐसे आज भी बहुत से मनुष्य भ्रांति में जी रहे हैं। उनको भी पद्मावती की तरह अपनी भ्रांतियों को दूर कर लेना चाहिए।

तृतीय महत्वपूर्ण तथ्य यह भी प्रकाश में आया कि जब प्राणी का पाप कर्म का उदय आता है तब उसे निरपराधी चित्रसेन की तरह **'अपना देश छूटना'** आदि कठोरतम दण्डों को भी भोगना पड़ता हैं धन्य है चित्रसेन के लिए, जिसने अपने पिता की आज्ञा को मन में कुछ भी विकल्प किये बिना अष्टम बलभद्र राम की तरह या बुद्धसेन की तरह पूर्ण किया।

चतुर्थ महत्वपूर्ण तथ्य, जो ध्यान देने योग्य है, वह यह है कि वर्तमान में पुण्य के उदय के समय साथ रहने वाले तो हजारों मिल जाते हैं किन्तु जब पाप कर्म का उदय आता है तब किसी मित्र के साथ देने की बात तो दूर रही अपितु मित्र भी विश्वासघाती शत्रु बन जाते हैं। किन्तु राजकुमार चित्रसेन के मित्र **रत्नसार**, जो मंत्री बुद्धिसागर व मंत्राणी बुद्धिमती का पुत्र था, ने दुख-सुख में उसका साथ देकर सच्ची मित्रता निभाई।

पंचम महत्वपूर्ण तथ्य यह प्राप्त होता है कि राजा को न्यायप्रिय, प्रजावत्सल, सुधी एवं धर्मात्मा होना चाहिए। राजा वीरसेन ने प्रजा की शिकायत को सुनकर अपने पुत्र को ही दण्डित किया, प्रजा को नहीं। महान व्यक्ति पर-व्यक्तियों के संशय या भ्रम को दूर करने के लिए राम या राजा श्रेणिक की तरह अपनी पत्नी या पुत्र को ही दण्ड देते हैं, मिथ्या लोकापवाद सहन नहीं करते।

षष्ठम महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि स्त्रियों की संगति दुखों को ही देने वाली होती है। यहां स्त्रियों ने अपना दोष कुमार पर ही मढ़ दिया। कुमार को देख स्वयं की ही काम-वासना जाग्रत होती थी, अतः स्वयं को ही दण्ड/प्रायश्चित लेना चाहिए था किन्तु उसने राजकुमार को दण्डित करा दिया। क्षणभर के लिए स्त्री-संगति भी दुख या निंदा का कारण बन सकती है।

सप्तम तथ्य यह है कि राजा वीरसेन ने द्वितीय शादी कर ली। तथा उस के मोहपाश में बंध कर/विषय वासना में आसक्त हो कर अपने सुयोग्य पुत्र का वध करने का षडयंत्र रच डाला। स्त्री-संगति व विषय आसक्ति सर्व अनर्थों की जड़ है। विषयासक्त प्राणी बड़े-बड़े अनर्थ करने से भी नहीं चूकता।

अष्टम तथ्य 'माता के हृदय की ममता' को दृष्टिगोचर करता है। चित्रसेन की मां ने उसे जाते समय सात रत्न दिये व मार्ग के लिए कलेवा दिया तथा उसे जाते देख मूर्च्छा खाकर गिर पड़ी। उसी पुत्र के वियोग में उसके प्राणों का वियोग हो गया। माता के हृदय के समान हृदय या उस जैसा वात्सल्य अन्यत्र नहीं मिलेगा। इसलिए तो माँ को ममता की मूर्ति कहा जाता है। सच्ची माँ के लिए पुत्र व पुत्री दोनों समान है वह उनके लिए प्राण तो दे सकती है परन्तु स्वप्न में भी उन के प्राण नहीं ले सकती। **जो माँ अपने गर्भस्थ शिशु का मरण/गर्भपात/भ्रूण हत्या कराये उसे मातृत्व के नाम पर कलंक ही समझना चाहिये। आज उन अभागी संतान भक्षी नागिन माताओं को चित्रसेन की माँ रत्नमाला के व्यवहार से जीवन में अहिंसा, करुणा, दया का संकल्प लेना चाहिये। तभी वह धर्मात्मा कही जा सकती हैं।**

नवाँ महत्वपूर्ण तथ्य है, पूर्व संस्कार व कर्मों की प्रबलता— पूर्वभव में चित्रसेन व पद्मावती हंस-हंसिनी के मरण के कारण ही इस भव में भी दोनों पति-पत्नि हुये। संभव है कि मंत्री रत्नसार ही पूर्वभव का उन हंस-हंसिनी का बच्चा रहा हो? इसलिये इस भव में भी उसने उन दोनों की रक्षा की।

दसवाँ महत्वपूर्ण तथ्य है, पुण्य के उदय में अपरिचित भी मित्र जैसा व्यवहार करते हैं गोमुख यक्ष व चक्रेश्वरी यक्षी ने राजकुमार के बारे में कथा कही तथा मंत्री रत्नसार ने सुनी और राजकुमार की मृत्यु को टालने में कारण बना। पुण्य के उदय से अलभ्य वस्तु भी शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है, पापीजन वस्तु का संग्रह व रक्षण तो कर सकते हैं, किन्तु पुण्यात्मा उस इष्ट वस्तु का भोगोपभोग करते हैं।

ग्यारहवीं महत्वपूर्ण बात यह है कि एक आदर्श राजा पर विश्वास नहीं करना चाहिये, वह कभी किसी का सगा नहीं होता, क्योंकि प्राणपन से समर्पित मंत्री रत्नसार के बारे में भी उसे शंका हो गई, इसलिये पूर्ण बात को मानकर ही वह माना, मंत्री ने कहा भी कि मैं पत्थर का हो जाऊँगा फिर भी वह नहीं माना, स्त्री के मना करने भी अपना हठ नहीं छोड़ा।

बारहवाँ महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जिस प्रकार रत्नसार मंत्री ने राजा का उपकार किया उसी प्रकार राजा ने भी दु:खित हो, जंगल में गोमुख यक्ष व चक्रेश्वरी यक्षी से मंत्री को पुन: उसी अवस्था में लाने का उपाय पूछा, तथा उसके वियोग में प्राण तक देने को तैयार हो गया।

तेरहवाँ महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि महारानी पद्मावती की शील परीक्षा– राजा चित्रसेन को अभी तक रानी के शीलव्रत में संदेह था, अत: उसने अपनी रानी के लिये यह आज्ञा दी कि पुत्र को लेकर इस मूर्ति को छू, यदि यह मूर्ति पुन: मंत्री नहीं हुआ तो तुम्हें दण्ड मिलेगा? तब रानी ने अपने शील की दृढ़ता से परीक्षा दी जिसमें वह सफल तो हुई, सभी सभासदों ने भी जय–जयकार किया। वर्तमान की मातायें, बहिनें व भाई बन्धु भी काश अपने शील का इसी तरह निर्दोष पालन करें तो क्या उनका पापकर्म पुण्य में नहीं बदल सकता? क्या उनके द्वारा स्पर्शित वह आत्मा आधि, व्याधि, उपाधि से मुक्त हो परमात्मा नहीं बन जायेगी?

चौदहवाँ महत्वपूर्ण तथ्य है अकारणबन्धु – चित्रसेन ने हेमपुर के राजा हेमरथ की हेमलता स्त्री से उत्पन्न हेममाली की सहायता की, रत्नचूड़ ने उसकी स्त्री का अपहरण किया था। किन्तु राजा चित्रसेन ने हेममाली को उसकी स्त्री दिलायी तथा दोनों की मित्रता भी करायी तब हेममाली ने चित्रसेन को आकाशगामी पलंग व शत्रुञ्जय नामक अजेय शस्त्र भेंट किया। तथ रत्नचूड़ ने मन चाहा रूप बनाने वाली गुटिका दी। काश आप भी संसार में अकारण बन्धु हों तो कोई दुखी ही क्यों रहे?

पन्द्रहवाँ तथ्य यह है कि रागवृद्धि के कारणों में भी वैराग्य–चित्रसेन अपरिमित वैभव का भोक्ता बन अपने राज्य का संचालन करता है धर्मध्यान पूर्वक समय व्यतीत करता है। एक दिन दमवर मुनि से धर्मोपदेश सुनकर दिगम्बर जिन दीक्षा अंगीकार कर अच्युत स्वर्ग में देव हुआ। पद्मावती भी आर्यिका दीक्षा ले दुर्धर तप करके अच्युत स्वर्ग में देव हुयी। आगे ये दोनों पुण्यवान जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे।

प्रस्तुत ग्रंथ मुख्य रूप से आहारदान की अनुमोदना मात्र का फल तथा शील के माहात्म्य पर प्रकाश डालता है। शील पालन की उत्तम प्रेरणा देने वाला यह ग्रंथ प्रत्येक प्राणी के लिये आचारणीय है। यह भारत वसुन्धरा आज से ही नहीं अपितु चिरकाल से ही भोग विलास को छोड़कर शील पालन, सन्त सेवा, आध्यात्मिकता, परोपकार एवं त्यागवृत्ति अपनाने में ख्यात रहा है। आज भी धार्मिकता, आध्यात्मिकता सुसंस्कार तत्व के कारण ही भारत का सिर विश्व के देशों में उच्चता को प्राप्त है।

मानव मात्र को कुपथ से हटाकर सुपथ की ओर लगाना ही पुराण शास्त्र व चरित्र ग्रंथों का प्रधान उद्देश्य रहता है। यह कठिन कार्य दृष्टान्त के द्वारा सरल, सुगम हो जाता है इसलिये न केवल भारत वर्ष में या केवल जैन धर्म में ही नहीं अपितु विश्व के समस्त देशों व धर्मों में ऐसे ग्रंथों का महत्वपूर्ण स्थान है। एवमेवास्तु।

प्रस्तुत ग्रंथ के मूल रचियता पं. पूर्णमल्ल जी हैं इसकी मूल रचना संस्कृत भाषा में निबद्ध है उसी का द्वितीय हिन्दी अनुवाद पं. भुजबली शास्त्री ने किया। जिससे यह श्रावकों के लिये बहुत महत्वपूर्ण कृति बन चुकी है।

आचार्य भगवन्त कुन्दकुन्द स्वामी जी की परम्परा में हुये धर्मकीर्ति के शिष्य पद्मकीर्ति, पद्मकीर्ति के शिष्य सुरेन्द्र कीर्ति, सुरेन्द्रकीर्ति के शिष्य सकल कीर्ति, सकल कीर्ति के शिष्य सुरेन्द्र कीर्ति थे। इन मुनिवर सुरेन्द्र कीर्ति भट्टारक के ही ये सुयोग्य शिष्य पं. पूर्णमल्ल जी थे। इससे अधिक इनका परिचय हमारे दृष्टिगोचर नहीं हो सका है।

प्रस्तुत ग्रंथ '**चित्रसेन पद्मावती चरित्र**' का प्रकाशन आज से 63 वर्ष पूर्व 2.2.1939 ई. तथा विक्रम संवत् 1959 में हुआ था। इसकी एक प्रति अत्यन्त कठिनाई से दीपक जैन धर्मपुरा दिल्ली वालों के माध्यम से पंचायती दिगम्बर जैन मन्दिर से मिल सकी। एतदर्थ उन्हें व उनके साथियों को धर्मवृद्धि आशीर्वाद। कई स्थानों पर तो प्राचीन शास्त्रों की बड़ी दुर्दशा हो रही है क्योंकि उन्हें पढ़ने वाले तो

दूर, सम्भालने वाला भी नहीं मिलता है। अलमारियों में बीस-पच्चीस साल से ताले पड़े हैं। ग्रंथों के पृष्ठ दीमक व कीड़ों ने नष्ट कर दिये। फिर भी सुरक्षा का भाव न जाने क्यों मन में नहीं आता? न जाने क्यों वृद्ध पुरुष अपनी सत्ता छोड़ना नहीं चाहते? न ही युवावर्ग को धर्म की ओर प्रेरित ही कर पाते हैं। वर्तमान में युवा भाइयों को रोचक प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों की बहुत आवश्यकता है। यह प्रकाशन अवश्य ही आबाल-वृद्धों को ही नहीं अपितु धर्म से विपरीत मार्ग पर चलने वाले युवा युवतियों को भी धर्म की ओर प्रेरित करेगा। ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में सहयोगी संघस्थ समस्त साधुवृन्दों एवं त्यागी व्रतियों को सुसमाधिरस्तु आशीर्वाद। प्रकाशक निर्ग्रंथ ग्रंथमाला, मुद्रक अनिल कुमार जी चन्द्रा कॉपी हाउस, आगरा एवं अपने द्रव्य को भी धर्मवृद्धि आशीर्वाद तथा प्रत्यक्ष व परोक्ष में अन्य भी सहयोगियों को धर्म वृद्धि आशीर्वाद।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ छद्मस्थ के द्वारा जो त्रुटियाँ रह गयी हों सकल संयमी विज्ञजन हमें अवगत कराने का तथा आगामी प्रकाशन के लिये समुचित सुझाव प्रेषित करने का सम्यक् पुरुषार्थ करें। सुधी पाठकगण हंसवत् गुणग्राही दृष्टि बनाकर विनय पूर्वक ग्रन्थ/शास्त्र का आद्योपान्त स्वाध्याय करने का सम्यक् श्रम करें/यह स्वाध्याय ही आत्म कल्याण का परम हेतु है। प्रत्येक प्राणी आत्म कल्याण/सिद्धावस्था को प्राप्त हो ऐसी मेरी मंगल भावना है।

इत्यलमति विस्तरेण!

श्री शुभमिति कार्तिकवदी 5
वीर निर्माण संवत् 2527
श्री संभव नाथ भगवान का
केवलज्ञान कल्याणक

जिनचरणानुचर, संयमानुरक्त
कश्चिदल्पज्ञ श्रमण:
6.11.2001 धर्मपुरा, चाँदनीचौक,
दिल्ली

प० पू० एलाचार्य श्री १०८ वसुनन्दी जी मुनिराज (निर्णय सागर) द्वारा रचित, संपादित एवं निर्ग्रंथ ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित उपयोगी साहित्य

१. निज अवलोकन
२. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
३. हमारे आदर्श
४. चित्रसेन पद्मावती चरित्र
५. नंगानंग कुमार चरित्र
६. धम्म रसायणं
७. मौनव्रत कथा
८. सुदर्शन चरित्र
९. प्रभंजन चरित्र
१०. सुरसुन्दरी चरित्र
११. जिन श्रमण भारती
१२. सर्वोदय नैतिक धर्म
१३. चारुदत्त चरित्र
१४. करकण्डु चरित्र
१५. रयणसार
१६. नागकुमार चरित्र
१७. सीता चरित्र
१८. योगामृत
१९. मीठे प्रवचन
२०. आध्यात्म तरंगिणी
२१. सप्त व्यसन चरित्र
२२. वीर वर्धमान चरित्र
२३. स्वप्न फल विचार
२४. भद्रबाहु चरित्र
२५. हनुमान चरित्र
२६. महापुराण
२७. कल्याणी
२८. योगसार प्राभृत
२९. ध्यानसूत्राणि
३०. भव्य प्रमोद
३१. सदार्चन सुमन
३२. तत्वार्थ सार
३३. कल्याणकारक
३४. श्री जम्बूस्वामी चरित्र
३५. आराधना सार
३६. यशोधर चरित्र
३७. व्रतकथा संग्रह
३८. तनाव से मुक्ति
३९. उपासकाध्ययन
४०. सुभाषित रत्न संदोह
४१. राम चरित्र
४२. हरिवंश कथा
४३. नीतिसार समुच्चय
४४. आराधना कथा कोश
४५. क्षत्रचूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)
४६. तत्वार्थसूत्र संसिद्धि
४७. दशामृत
४८. सिन्दूर प्रकरण
४९. प्रबोध सार
५०. शान्तिनाथ पुराण
५१. तनाव से मुक्ति
५२. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
५३. सम्यक्त्व कौमुदी
५४. धर्मामृत
५५. कर्म विपाक
५६. पुण्य वर्द्धक
५७. पुण्यास्रव कथा कोश
५८. धर्म परीक्षा
५९. चौंतीस स्थान दर्शन
६०. अमरसेन चरित्र
६१. सार समुच्चय
६२. दान के अचिन्त्य प्रभाव
६३. पुराण सार संग्रह
६४. प्रद्युम्न चरित्र
६५. आहार दान
६६. सुलोचना चरित्र
६७. गौतम स्वामी चरित्र
६८. महीपाल चरित्र
६९. जिनदत्त चरित्र
७०. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
७१. चेलना चरित्र
७२. धन्यकुमार चरित्र
७३. सुकुमाल चरित्र
७४. कुरल काव्य
७५. धर्म संस्कार भाग-१,२
७६. प्रकृति समुत्कीर्तन
७७. भगवती आराधना
७८. निर्ग्रंथ आराधना
७९. निर्ग्रंथ भक्ति
८०. कर्मप्रकृति
८१. पूजा-अर्चना
८२. नौ-निधि
८३. पंचरत्न
८४. व्रताधीश्वर-रोहिणी व्रत
८५. भावत्रयफल प्रदर्शी
८६. रत्नकरण्डक श्रावकाचार
८७. तत्त्वार्थ सूत्र
८८. छहढाला (तत्त्वोपदेश)
८९. जलगालनः क्या, क्यों, कैसे?
९०. धर्मः क्या, क्यों कैसे?
९१. स्वाति की बूँद
९२. श्री महावीर भक्तामर स्तोत्र
९३. सीप का मोती (महावीर जयन्ती प्रवचन)
९४. निश भोजन त्यागः क्यों?
९५. सच्चे सुख का मार्ग
९६. जिनदर्शन से निजदर्शन
९७. दिगम्बरत्वः क्या, क्यों, कैसे?
९८. अन्तर्यात्रा
९९. पंचपरमेष्ठी विधान
१००. श्री शांतिनाथ, भक्तामर, सम्मेदशिखर विधान
१०१. मेरा संदेशा
१०२. धर्मबोध संस्कार १,२,३,४
१०३. सप्त अभिशाप

चित्रसेन-पद्मावती चरित्र

प्रथम सर्ग

भव्यजन रूपी कमलों का विकास करने वाले, उन महावीर भगवान की मैं (ग्रन्थ की) वन्दना करता हूँ, 'जिन्होंने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु नाम, गोत्र और अन्तराय, इन आठ कर्मों का नाश कर मोक्ष प्राप्त किया है।'

उपर्युक्त आठों कर्मों के नाश करने वाले, ऋषभ, अजित आदि तेईस तीर्थंकरों को भी मैं नमस्कार करता हूँ जिन्होंने सदुपदेश द्वारा भव्यजनों का उद्धार किया है।

आयु गुण विराजमान, परमानन्दमय पद में लीन, योगियों को ध्यान करने योग्य, सिद्ध भगवान को परम पद की प्राप्ति के लिये मैं नमस्कार करता हूँ।

छत्तीस गुण धारक, निर्दोष चारित्र के पालन करने वाले, निरन्तर स्व-पर-हित-परायण, आचार्यों को उनके गुणों की प्राप्ति के लिये मैं नमस्कार करता हूँ।

मैं उन उपाध्यायों की शास्त्रीय ज्ञान की प्राप्ति के लिये स्तुति करता हूँ, जो स्वयं-शास्त्र-समुद्र के पारगामी हैं, और अपने शिष्यवर्ग को निरन्तर शास्त्रों का अध्ययन कराते हैं।

साधुवृत्त की प्राप्ति के लिये मैं उन साधुओं का स्तवन करता हूँ, जो अट्ठाईस मूलगुणों के धारक हैं, तथा जो निरन्तर आत्मध्यान में लीन रहते हैं।

तथा द्वादशांग वाणी की रचना करने वाले, वृषभसेन से आदि लेकर गौतम पर्यन्त समस्त गणधरों को मैं नमस्कार करता हूँ।

तथा जिनेन्द्र भगवान के मुखकमल से उत्पन्न होने वाली मनोहर सरस्वती देवी को, बुद्धि विकास के लिये मैं नमस्कार करता हूँ।

ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये पंच परमेष्ठी आदि को नमस्कार कर अब मैं उस आश्चर्यमय कथा का प्रारम्भ करता हूँ, जिसके द्वारा उत्तम शीलव्रत की प्राप्ति होगी।

इस पृथ्वी मंडल पर गोलाकार, एक लाख योजन विस्तारवाला, लवण समुद्र से घिरा हुआ, जम्बू (जामुन) वृक्ष से चिह्नित, चौंतीस क्षेत्रों से परिपूर्ण, महा समृद्धिशाली, जम्बूद्वीप हैं।

इस जम्बूद्वीप के बीच में सुदर्शन मेरु है, जो षट्कुलाचलों से शोभायमान है, तथा सोलह जिन चैत्यालयों और भद्रशाल, पांडुक वनादिकी अनुपम शोभा को धारण करता है। सुदर्शन मेरु की वरुण दिशा में भरतक्षेत्र है। तथा इस भरत क्षेत्र में पच्चीस योजन ऊँचा विजयार्द्धगिरि है। इसकी दक्षिण और उत्तर श्रेणी में एकसौ दस महासमृद्धि शालिनी नगरी हैं। इनमें देवों के समान ऐश्वर्यवान, विद्या, कौशल और सदाचारी विद्याधर निवास करते हैं। नौ कूटों से युक्त इस विजयार्द्धगिरि का विस्तार पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक है।

इसी विजयार्द्धगिरि को भेदकर गंगा और सिन्धु नाम की दो नदियां निकली हैं। इनमें से गंगा नदी पूर्व समुद्र में और सिन्धु नदी पश्चिम समुद्र में मिली है।

इन्हीं गंगा और सिन्धु नदियों के बीच आर्यक्षेत्र है इस आर्यक्षेत्र का विस्तार 225 योजन से कुछ अधिक है, तथा इस क्षेत्र में 32000 देश हैं। और इन में आर्यजन निवास करते हैं।

इसी भरतक्षेत्र में मगध नाम का एक विशाल देश है, और इस मगध देश में राजगृह अति मनोहर नगर है। तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि-श्रेणिक नामका राजा मगध देश का अधिपति था। राजगृह नगर को उसने राजधानी बनाया था। इसलिये वह राजगृह ही में निवास करता था। महाराज श्रेणिक को जिनधर्म में गाढ़ श्रद्धा थी। महाराज श्रेणिक की पट्टरानी का नाम था चेलना। चेलना परम सुन्दरी, सौभाग्यवती और पतिव्रता थी। इन दोनों के वारिषेण, अभय कुमार आदि राजकुमार थे। यह राजकुमार धर्मात्मा और राज कार्य में अत्यन्त निपुण थे।

इस प्रकार महाराज श्रेणिक को सांसरिक सुख की संपूर्ण सामग्री मौजूद थी। महाराज भलीभांति प्रजा-पालन करते हुए अपने समय को बिताते थे।

एक समय महाराज अन्तःपुर (रनवास) में सुख से सो रहे थे, अभी सवेरा होने में कुछ देर थी, महाराज की अचानक नींद खुल गई। और महाराज शय्या पर पड़े पड़े इस प्रकार विचार करने लग कि 'यद्यपि मैंने शास्त्रों में तो शील का माहात्म्य और शीलवान महात्माओं की कथा तो अनेकबार सुनी है, पर मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस वर्तमान समय में भी कोई अखण्ड शीलव्रत का पालन करने वाला है या नहीं, इस बात को जानने का क्या उपाय हो सकता है? हाँ, यदि महावीर भगवान के दर्शन हों तो अवश्य मेरी यह आशा पूर्ण हो सकती है।

महाराज श्रेणिक यह विचार कर रहे थे कि इतने में सवेरा भी हो गया। सब लोग निद्रा छोड़ अपने अपने कार्यों में लग गये। महाराज ने भी उठकर स्नानादि कर जिनेन्द्र भगवान की पूजा की। इस प्रकार दैनिक क्रिया करके महाराज ने भोजन किया और थोड़ी देर बाद वस्त्र-अलंकारादि से भूषित होकर भद्र वेष में राजसभा में आये। महाराज के सभा में आ जाने पर नाना प्रकार के बाजों की मधुर ध्वनि होने लगी, शूर-सामन्त आकर प्रणाम कर योग्य आसन पर बैठ गये। मंत्री और पुरोहित भी महाराज के आसपास बैठे थे। अधीन राजाओं के यहाँ से आये हुये उपहार (नजर) का महाराज ने निरीक्षण किया।

इतने ही में छहों ऋतुओं के फल फूलों को लेकर माली ने आकर महाराज को प्रणाम किया तथा अति विनय से महाराज से निवेदन किया कि महाराज! आपके शुभ कर्म के उदय से इसी विपुलाचल गिरि पर महावीर भगवान का शुभागमन हुआ है! यह शुभ समाचार सुनकर महाराज को परम आनन्द हुआ। महाराज ने वनपाल को खूब इनाम देकर विदा किया। तथा विपुलाचल की ओर सप्तपद चलकर महावीर भगवान की परोक्ष वन्दना की।

महाराज ने नगर में घोषण करवा दी। नगर के समस्त आबाल-वृद्ध नर-नारी गण, अपार आनन्द में मग्न हो गये। महाराज ने अपने समस्त परिवार,

चतुरंग सेना और नगर के समुदाय को लेकर वीर भगवान की वंदना के लिये विपुलाचल की ओर प्रस्थान किया। महाराज के आगे आगे जो अनेक भांति के बाजे बजते थे, उनके मनोहर शब्दों से दिशायें गूंज उठीं, उस समय की शोभा अनुपम थी। उस महान जनसमुदाय के बीच में महाराज श्रेणिक ठीक इन्द्र जैसे शोभित होते थे।

थोड़ी देर चलने के बाद भगवान का समवशरण दृष्टिगोचर होने लगा। महाराज हाथी पर से उतर पड़े, और दल बल सहित विपुलाचल पर आरोहण किया।

समवशरण में विराजमान वीर भगवान की तीन प्रदक्षिणा दीं और विशुद्ध मन, वचन, काय से पूजा की। पूजा स्तुति करने के बाद महाराज मनुष्यों के कोठे में विराजमान हुए। वीर भगवान की दिव्यध्वनि सुनकर महाराज को अपार आनन्द हुआ।

अवसर देखकर महाराज श्रेणिक ने अत्यन्त विनीत भाव से वीर प्रभु के प्रति निवेदन किया कि-भगवान! अब से पहले का शील माहात्म्य पूर्व तीर्थंकरों ने भलीभांति वर्णन किया है, तथा पुरुषों में मेघकुमारादिक और नारियों में सीता आदि ने अखण्ड शीलव्रत का पालन किया, तथा इन्होंने इस लोक में अत्यन्त गौरव प्राप्त किया है और परलोक में भी उत्तम पद के अधिकारी हैं। वास्तव में शील का माहात्म्य बड़ा ही उत्तम एवं मुक्ति तक का देने वाला है, पर भगवन्! मैं जानना यह चाहता हूँ कि इस वर्तमान समय में भी कोई इस व्रत का पालन करने वाला है या नहीं?

महाराज श्रेणिक के इस प्रश्न के बाद भगवान की मेघ निनाद समान गम्भीर ध्वनि हुई, जिसका मर्म इस प्रकार है-

भरतक्षेत्र-आर्यखण्ड में, समस्त देशों का शिरोमणि कलिंग नाम का देश है। यह देश धन-धान्य से समृद्ध, ग्राम, पर्वत, सुन्दर वन और नदियों आदि की प्राकृतिक शोभा का केन्द्र है। इस देश में दुर्भिक्ष, महामारी, चोरी, और राजकर आदि की पीड़ा प्रजा को नहीं भोगनी पड़ती है। इस देश में वन उपवनों की विचित्र भूमि, नाना जाति के फल, फूल, उन पर गुंजायमान भ्रमरों

का श्रवण सुखद कलरव अलौकिक आनंदजनक है। इस देश के निर्जन-कानन में, जितेन्द्रिय, तप और ध्यान में लीन, परम शान्त मुद्राधारक मुनिजन सदा विहार करते हैं।

यहाँ के विशाल-जिन चैत्यालय, उनमें विराजमान कमनीय कान्ति, जिन प्रतिबिम्ब तथा चैत्यालयों की विचित्र उपकरणों द्वारा सजावट देखते ही बनती है। इन चैत्यालयों में प्रतिदिन प्रसन्न मन नर-नारीगण आकर भगवान की पूजा करते हैं। वास्तव में इस देश की शोभा देखकर, देवों को भी आश्चर्य होता है।

इस कलिंङ्ग देश में वसन्तपुर नामका एक नगर है। यह नगर भी परम रमणीय एवं बड़ा ही विशाल ही है। इसकी रक्षा के लिये तीन कोट और खाई बनी है। नगर की चारों दिशाओं में चार दरवाजे बने हैं। उन्नत-जिन मंदिर, विशाल राजमहल, और धनिकों के सुन्दर प्रासादों से नगर अलौकिक शोभा को धारण करता है। बाजार, चौक, नाटकघर आदि ने नगर की शोभा दुगुनी बना दी थी। वहाँ के मकानों की कांच समान निर्मल भीटों में हाथी अपनी परछांई देखकर इसको दूसरा हाथी समझकर उनमें भ्रम से दन्तप्रहार करते थे।

वहाँ के गोलाकर तालाबों में निर्मल जल भरा था, उसमें सब तरह के कमल खिल रहे थे, कमलों का सुगन्धिमय पराग उड़-उड़ कर जनता के मन को प्रसन्न करता था। उन तालाबों में हंस हंसिनी, चकवा चकवी किलोल करते हैं। बसनापुर के वन और उपवनों ने समृद्धि शाली फल फूलों से नन्दनवन की शोभा जीत ली थी। वहाँ के बगीचे में अशोक, चम्पक, आम, नारंगी, नीबू, अनार, केला, सुपारी, किसमिस, खर्जूर, चन्दन आदि विविध जाति के वृक्ष लगे थे। सारांश यह है कि वसन्तपुर सब तरह से उत्तम है।

वहाँ के स्त्री-पुरुष बड़े ही धार्मिक हैं, व्रताचार परायण हैं, दया और दान में लीन हैं। वास्तव में वसन्तपुरी निवासी जन स्वर्ग और मुक्ति के अधिकारी हैं।

वहाँ के मनुष्यों में और स्वर्गीय देवों में केवल इतना ही अन्तर है। कि देव निर्निमेष दृष्टि हैं और मनुष्यों के पलक झपकते हैं, और सब तरह से वसन्तपुर

निवासी जन देव तुल्य हैं। वसन्तपुर के महाराज का नाम वीरसेन है। महाराज एक उत्तम शासक हैं उनकी आज्ञा का कोई भी उल्लंघन नहीं करता। महाराज वीरसेन बड़े ही नीति निपुण है। शूर सामन्तों का वे बड़ा आदर करते हैं, उनके बड़ी विशाल चतुरंग सेना है। महाराज विजेता हैं और दयालु हैं, परम दानी हैं, और शत्रुओं के लिये पूरे अभिमानी भी हैं, महाराज पवित्र हृदय सुन्दर युवा, प्रतापी और जैनधर्म के परम उपासक हैं।

इनकी महारानी का नाम रत्नमाला है। रत्नमाला भी परम सुन्दरी, पतिव्रता, यौवन-सम्पन्न, दयावती और जिनधर्म परायण हैं। रत्नमाला का हृदय पवित्र है, और वह सदा पति की आज्ञाकारिणी है।

एक समय यह दम्पती शयनागार में सोये हुए थे, पिछली रात में उत्तम फल देने वाले स्वप्नों को देखा। सवेरा होने पर प्रात:काल की समस्त क्रियाओं को करके अच्छे-अच्छे अलंकारों से भूषित हो, कुछ सहेलियों को साथ लेकर रात के देखे स्वप्नों को सुनाने के लिये महाराज के निकट गई। महाराज से आदरपूर्वक महारानी ने निवेदन किया प्राणनाथ! आज रात को मैंने पूर्णमासी का निर्मल चन्द्रमा, सफेद हंस, शुक्लवर्ण गजराज, और मुँह में प्रवेश करते हुए सिंह को स्वप्नों में देखा हैं मुझे इन स्वप्नों के फल सुनने की बड़ी उत्कृट अभिलाषा है, कृपाकर आप इन स्वप्नों का फल बताइये।

महाराज ने प्रसन्न होकर कहा-प्रिये! इन स्वप्नों से तो जान पड़ता है, तुम्हारे गर्भ से पुत्ररत्न की उत्पत्ति होगी। सुनो, पूर्ण चन्द्रदर्शन का फल यह है कि पुत्र चौंसठ कलाओं का धारी होगा। सफेद हंस का फल है कि पुत्र की निर्मल कीर्ति दिगन्तव्यापिनी होगी शुक्ल गजराज का फल है कि पुत्र गम्भीर होगा और चौथे स्वप्न का फल यह है कि पुत्र प्रतापी, पराक्रमी होगा।

इस प्रकार स्वप्नों के फल को सुनकर महारानी को सीमातीत आनन्द हुआ।

स्वप्नों के देखने से तथा उनका फल सुनने मात्र से ही पुत्र लाभ जैसा आनन्द हुआ।

रानी ने उसी दिन गर्भ धारण किया। महाराज ने उत्तम चिकित्सकों द्वारा गर्भ-रक्षा का उचित प्रबन्ध किया। धीरे-धीरे कुशल पूर्वक नौ महा बीत गये तथा शुभ मुर्हूत में महारानी रत्नमाला ने पुत्ररत्न उत्पन्न किया।

यह शुभ समाचार सुनकर महाराज के हृदय में आनन्द सागर लहराने लगा। महान सजधज और आयोजनपूर्वक पुत्रजन्म का उत्सव मनाया। जिनेन्द्र भगवान की पूजा कराई, याचकों को भरपूर दान दिया। समस्त नगर आनन्दमय हो गया। कहीं नाना प्रकार के बाजों की ध्वनि है तो कहीं मधुर संगीत का समारम्भ हो रहा है। कहीं नाच हो रहा है तो कहीं दुंदुभी का गंभीर नाद दिशाओं को गुंजित कर रहा है। सारांश यह कि संपूर्ण नगरवासी जनों ने बड़े ही उत्साह से राजकुमार का जन्मोत्सव मनाया।

महारानी ने पुत्रजन्म के उत्सव में किसी बात की कमी नहीं रखी। अपने बन्धुवर्ग, राजकर्मचारीगण और नागरिक लोगों को निमन्त्रित कर सम्मानपूर्वक उत्तम-उत्तम वस्त्र अलंकर, पान, सुपारी आदि से यथोचित शिष्टाचार किया।

शुभ मुहूर्त में राजकुमार का नामकरण हुआ। राजकुमार का नाम चित्रसेन रखा गया।

अब तो राजकुमार बाल चन्द्रमा की तरह दिनोंदिन बढ़ने लगा। कुछ दिनों के बाद नवजात बालक अपनी स्वाभाविक-बालचेष्टा से, तोतली बोली से माता के मन को प्रसन्न करने लगा, इसी क्रम से राजकुमार की बाल्य अवस्था बीत गई, और कुमार अवस्था में पदार्पण किया।

शुभ मुहूर्त में योग्य उपाध्याय के पास राजकुमार को अक्षराभ्यास प्रारम्भ कराया गया।

राजकुमार की बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी। इस कारण थोड़े ही दिनों में धर्मशास्त्र, व्याकरण, काव्य, राजनीति आदि समस्त आवश्यक विषयों का अध्ययन कर लिया। थोड़े ही दिनों में पुत्र की विद्या-सम्पन्न देखकर पिता भी फूले अंग न समाये। बालक की चतुराई देखकर पिता को पूर्ण विश्वास हो गया कि यह राज्य-शासन अच्छी तरह चलायेगा।

राजकुमार चित्रसेन ने थोड़े ही दिनों में अपने उत्तम गुणों से प्रजा के हृदय में तथा अपनी विद्वता से विद्वानों के हृदय में और अपनी अलौकिक सुन्दरता से स्त्रियों के हृदय में स्थान पा लिया था। वे सर्वप्रिय और सर्वमान्य हो गये थे।

ग्रन्थकार कहते है कि इस संसार में धर्म करने से संपूर्ण सुखों की प्राप्ति हो सकती है। महाराज वीरसेन ने पुण्य के उदय से ही राज सिंहासन प्राप्त किया, पुत्र-रत्न की प्राप्ति भी पुण्य के उदय से हुई। इसलिये सर्व प्राणियों को सदा धर्म में लीन रहना चाहिये।

प्रथम सर्ग समाप्त।

द्वितीय सर्ग

पुण्य के उदय से प्राप्त हुये राज्य का पालन करता हुआ राजा वीरसेन धर्म कर्म के साथ साथ संसार भोगों को भोगता था। इसके मंत्री का नाम बुद्धिसागर था। यह मंत्री बड़ा ही बुद्धिमान था।

मंत्री की स्त्री का नाम बुद्धिमती था। और लड़के का नाम रत्नसार था। यह रत्नसार बड़ा ही विनयी था। किसी समय मंत्रीपुत्र रत्नसार की चित्रसेन राजकुमार के साथ मैत्री हो गई। हर वक्त दोनों का हृदय एक था। राजकुमार और मंत्री पुत्र का पारस्परिक प्रेम होने के कारण दोनों आनन्द-समुद्र में गोते लगाने लगे, और नाना प्रकार से आमोद-प्रमोद में दिन बिताने लगे।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि राजकुमार चित्रसेन परम सुन्दर था। अपने सौंदर्य से कामदेव को भी लज्जित करने वाला था।

जब कभी राजकुमार नगर की गलियों में घूमने को निकलता था-स्त्रियों के झुण्ड के झुण्ड उसे देखने के लिये विह्वल हो उठते थे। उस समय का दृश्य (तामाशा) विलक्षण होता था, देखते ही बनता था। कोई खिड़कियों से झांकती थीं, कोई गली के एक कोने में खड़ी होकर ताकती थी, कितनी आगे आ खड़ी हो जाती थीं और कितनी ही उनका पीछा करने पर उतारू हो जाती थी। मतलब यह कि जिधर राजकुमार जाता था उधर ही स्त्रियों की खासी भीड़ हो जाती थी। उनकी मनमोहनी सूरत देखने के लिये घर का धन्धा छोड़ देना स्त्रियों के लिये मामूली सी बात हो गई थी। रोते बच्चे को संभालना तो दूर रहा, दूसरे के लड़के को लिये दौड़ जाती थीं। सच तो यह कि राजकुमार के अनौखे रूप को देखकर स्त्रियां अपनी सुध बुध भूल गई। गले का हार कमर में लटका लिया, करधौनी को गले में पहन लिया। हाथों का गहना पैरों में, पैरों का हाथों में पहन लिया। राजकुमार की सुन्दरता का कहाँ तक वर्णन किया जाये। पाठक इसी से पता लगा लें कि नवल नारियों की तो बात जाने दीजिये, बड़ी-बड़ी बूढ़ी स्त्रियों के मन को भी उसने चंचल कर दिया, वे भी उसे देखने को उकताने लगीं।

लेकिन राजकुमार चित्रसेन सुशील था, विचारशील था, नवयुवक होने पर भी जितेन्द्रिय था। यह सच है कि उसकी तरफ स्त्रियाँ देखती थीं, पर वह उनकी तरफ नहीं देखता था, देखकर भी उनके पवित्र हृदय में विकार नहीं होता था, बुरी दृष्टि से वह उनकी तरफ नहीं देखता था। वरन उन्हें माता और बहिन समझता था।

यद्यपि वह उनकी तरफ नहीं देखता था, वे स्त्रियाँ ही इसे देखती थीं। अत: कुमार निरपराध है और स्त्रियों का सरासर अपराध है। नगर के लोगों को कुलीन नैतिक चारित्र की निर्बलता देख दुख हुआ, ऐसा होना अनिष्ट समझा गया। लोगों के मन में क्षोभ-आतंक उत्पन्न हो गया।

इस बात पर विचार करने के लिये-उचित उपाय करने के लिये नगर के विचारशील, वयोवृद्ध, अनुभवी लोग इकट्ठे हुये। उस बात पर विचार किया और स्थिर किया कि राजा के पास जाकर निवेदन करना चाहिये।

सब लोग राजा के पास गये। सभा में सिंहासन पर बैठे हुये राजा को प्रणाम किया और नीचे मुंह करके बैठ गये।

आगत मनुष्यों के आने का कारण राजा की समझ में नहीं आया। इसीलिये राजा ने उन लोगों से आने का कारण पूछा।

राजा के पूछने पर उन सबका मुखिया कहने लगा-महाराज! सुनिये! हम अपने आने का कारण बतलाते हैं। जिस प्रजा का आप शासन करते हैं वह दुखी हो, यह तो कभी हो ही नहीं सकता।

आज जो हम लोग आपके राज्य में रह कर इतने धनवान हैं, सब प्रकार से सुखी हैं, प्रजा में न दीन है और न कोई मूर्ख है। यह सब महाराज ! आपके सुशासन का फल है। पर दीनबन्धु! हम लोगों का एक निवेदन है-कहते लज्जा आती है, संकोच होता है, पर धर्मावतार! प्रजा पुत्र के समान होती है और राजा पिता के। इसलिये जो कुछ भी वास्तविक घटना-सच बात हो, उसे जैसी की तैसी कह देना हम उचित समझते हैं।

आपके सुपुत्र राजकुमार चित्रसेन गुणवान और सुशील हैं यह सच है, पर वे साक्षात् कामदेव के अवतार भी हैं, यह भी सच है। और कारण है कि वे

जब नगर में घूमते हैं तब उनको देखने मात्र से स्त्रियों के मन ठिकाने पर नहीं रहते, घर के सब कामकाज को छोड़कर उन्हें देखने लगती हैं। हम लोगों के मना करने पर भी वह नहीं मानती। सच तो यह है कि वह उनकी मनमोहनी सूरत को देख कर कामान्ध हो जाती हैं। ऐसा होने से हम लोगों को अनिष्ट होने की सम्भावना हो जाती है, इसलिये महाराज! राजकुमार से रक्षा का कोई प्रयत्न किया जाये, यही हम लोगों की प्रार्थना है।

राजा इस बात को सुनकर मन में विचारने लगा। बड़ी कठिन समस्या है–बड़ी मुश्किल हुई। जिस पुत्र का हमने ऐसी उत्तम रीति से लालन–पालन किया है जिससे हमें अपनी वंश वृद्धि की आशा है उसका निग्रह! उसे कठोर दंड कैसे दिया जा सकता? जो हो–पुत्र को हम दण्ड दें वह तो मुझसे न होगा। राजा इस विषय में बड़ी देर तक तर्क वितर्क करते रहे और अन्त में स्थिर किया कि मैं ऐसा कोई काम नहीं करना चाहता जिससे प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट हो। उससे हमारा कोई वास्ता नहीं, मतलब नहीं–जिससे प्रजा कष्ट भोगे। राजा की सत्ता प्रजा के आधीन है।

प्रजा के ही कारण कोई मनुष्य विशेष राजा कहाता है, इसलिये उत्तम राजा को हर वक्त इस बात की चेष्टा करनी चाहिये, जिससे अपनी प्रजा सुखी हो। शोभा के लिये कान में सोने के गहने पहने जाते हैं, यदि कान टूटें तो उस गहने ही से क्या प्रयोजन? इसी लिये कुल की वृद्धि के लिये–राज काज की उन्नति के लिये राजकुमार का होना आवश्यक है, अन्यथा नहीं। धन्य हैं वे नरपतिगण! राजा इस प्रकार पुत्र के विषय में विचार कर रहा था। राजा राजकुमार की करतूत से नाराज भी हो गया था।

नगर से घूम कर पिता को प्रणाम करने के लिये राजकुमार राज दरबार में आया। विनय से पिता को नमस्कार कर पास ही बैठ गया। बैठते ही राजा ने कहा–पुत्र! तुम्हारे विषय में नागरिक लोगों से विलक्षण बात सुनी। वे तुम्हारा उलाहना देने आये थे। तुम्हारे लिये अब यही उचित है कि तुम हमारे राज्य से बहुत शीघ्र चले जाओ। सुन भोला चित्रसेन उठ बैठा। पिता को अन्तिम प्रणाम कर अपनी माता के पास आया, माता के पैरों पर सिर रख दिया और पिता की

आज्ञा को माता को सुनाई। यह सुनते ही माता के सिर पर वज्र सा टूट पड़ा, पर राजा की आज्ञा अनिवार्य थी, वह टल नहीं सकती थी। माता को भी अन्तिम प्रणाम कर चित्रसेन चल दिया। माता ने चित्रसेन को जाते समय सात रत्न और रास्ते में खाने के लिये कुछ कलेवा दे दिया था।

माता से विदा हो हाथ में तलवार ले चित्रसेन राजकुमार अपने मित्र-मंत्रीपुत्र रत्नसार के घर गया। राजकुमार को अपने घर आये देख रत्नसार को बड़ा आनन्द हुआ। उसने अपने को कृतकृत्य माना-कहने लगा मित्र! मैं धन्य हूँ, सचमुच मेरा जन्म आज सफल हो गया। क्योंकि आज आपने कृपाकर मेरे घर को अपने शुभागमन से पवित्र किया।

रत्नसार चित्रसेन के मुँह की उदासीनता से बात को ताड़ गया। राजकुमार के अकस्मात् आने का कोई विशेष कारण अवश्य है। रत्नसार से न रहा गया। उसने उसी समय पूछा-मित्र! आप आज इस तरफ कैसे आये। आज आपका चेहरा उदास मालूम पड़ता है, जो कुछ बात हो मुझसे स्पष्ट कह दो। क्योंकि नीतिकारों का भी कहना है कि-'विश्वासपात्र मित्र, गुणी सेवक, प्रेमवती स्त्री, और सहृदय स्वामी से अपने दुख को प्रगट कर मनुष्य को सुखी होना चाहिये।

रत्नसार की बात सुनकर चित्रसेन ने सब वृतान्त कह डाला। और अन्त में कहने लगा-मित्र रत्नसार! मैं जब तक विदेश से न लौटूं तब तक तुम सुख से यहीं रहना, बस मैं यही कहने तुम्हारे पास आया हूँ। क्योंकि मेरे लिये तो जो कुछ भाग में बदा है होगा ही, तुम मेरे लिये किसी प्रकार दुख मत उठाना। यह सुन रत्नसार को बड़ा दुख हुआ। वह कहने लगा-मित्र चित्रसेन! भला बिना प्राणों के भी कहीं शरीर रह सकता है? तुम हमारे प्राण हो, तुम्हारे बिना मैं क्षणभर भी तो रह नहीं सकता, चाहे सुख हो दुख, हम और तुम मिलकर के ही भोगेंगे।

इस विचार से वे दोनों मित्र-राजकुमार और मंत्री पुत्र अपने देश को छोड़कर गुप्तरीति से विदेश के लिये चल दिये।

पुत्र को देश निकाला दे महाराज राजदरबार से रनवास में गया। रानी तो पहले ही शोकातुर हो रही थी, राजा के आने पर उससे न रहा गया, वह बड़े

जोर-जोर से रोने लगी। उसे रोती देख परिवार के लोग भी रोने लगे, इस समय राजा का धैर्य जाता रहा, वह भी बार-बार रोने लगा। रानी तो बेहोश हो गई, जैसे तैसे शीतोपचार से होश में आई पर पुत्र का वियोग भूली नहीं, वह दिनोंदिन दुबली होती जाती थी, निरन्तर यही रटा करती थी-हाय पुत्र! कुल दीपक! महाभाग! तुम पर देव ने बड़ा कोप किया। मुझे छोड़कर तुम कहाँ चल दिये, तेरे बिना इस राजमहल में कैसे रहूँ? राजा ने बिना विचारे तुम्हें निकालकर अच्छा नहीं किया। मेरा दुख तो दूर रहा, राजा स्वयं भी नि:सन्तान (निपूत) से हो गये, बिना पुत्र उनकी शोभा नहीं।

इस नगर के लोग बडे दुष्ट-अविचारी हैं। इन्हें मनुष्य नहीं हलाहल विष कहना चाहिये, क्या संसार में सुन्दर होना पाप है ?अगर उनकी मनचली स्त्रियाँ उसकी तरफ देखती थीं, उसे निहारती थीं, उसे देखकर काम से पीड़ित होने लगती थीं, तो यह दोष उन अलबेली ललनाओं का था न कि सुन्दर राजकुमार का मेरे इकलौते बेटे का।

जो मनुष्य अपने अपवाद के भय से दूसरे के झूठे दोषों को प्रगट करते हैं, वे लोक में निन्दनीय हैं वे सदाचारी नहीं कहे जा सकते। असल बात तो यह है कि लोगों को उसका सुन्दर होना अच्छा नहीं लगा। भगवन्! किस पाप के उदय से मुझे पुत्र का वियोग सहना पड़ा ? मैंने कभी स्वप्नों में भी देव, शास्त्र, गुरु की अवज्ञा नहीं की, कभी अनादर की दृष्टि से नहीं देखा। सदा ही जिनधर्म का पालन किया-कुछ जाना नहीं जाता, कर्मों की विचित्र गति है। इस प्रकार विलाप कर हृदय को पत्थर का बनाकर महारानी ने पुत्र का वियोग सहा।

इधर राजकुमार चित्रसेन और मंत्री पुत्र रत्नसार दोनों मित्र मार्ग की प्राकृतिक शोभा, ग्रामीण लोगों के समुदाय, वन में रहने वाले भीलादिक, निर्मल जल से भरी नदियाँ, उनमें किलो लें करते हंस हंसिनी अनेक पक्षीगण को देख प्रसन्न होते थे, रास्ते की थकावट दूर करते थे।

इस तरह चलते-चलते दोनों मित्र एक बड़े भारी जंगल में आ पहुँचे। जंगल बड़ा सघन था, सूर्य अस्त हो गया था। इसलिये वे दोनों वहीं ठहर गये,

दोनों थके तो थे ही। राजकुमार एक वृक्ष के नीचे सो गया, पर रत्नसार नहीं सोया जागता रहा। उसने कुछ दूरी पर किन्नर जाति के देवों का मधुर गान सुना। रत्नसार को बड़ा अचंभा हुआ। उसने राजकुमार को जगाया। उसने भी बाजे और गाने की मधुर ध्वनि सुनी। राजकुमार कहने लगा-रत्नसार! तुम तो यहीं रहो, और मैं इसका पता लगाकर अभी आता हूँ। रत्नसार कहने लगा-

राजकुमार! राजकुलांकार! जंगल बड़ा भयानक है, मनुष्य का तो नामनिशान नहीं है। जहाँ तहाँ सिंह, वाघ आदि हिंसक जंतु घूमते हैं ऐसी काली रात में अकेला तुम्हें वहाँ जाना उचित नहीं है! राजकुमार बोला-सच है, पर मैं क्षत्रिय कुलोत्पन्न वीर बालक हूँ। हम लोगों को ऐसी साधारण बातों में भय नहीं लगता। ऐसा कहकर राजकुमार जिधर से गाने की आवाज आ रही थी उसी तरफ चल दिया। साथ-साथ रत्नसार भी चला। कुछ दूर चलकर बड़ा ही रमणीय एक जिन चैत्यालय दिखाई दिया। वहाँ चारों निकायों के देवों का खासा जमाव हो रहा था। घण्टा, झालर, छत्र चमर आदि देवोपनीत उपकरणों से चैत्यालय की शोभा वर्णनातीत थी। अष्टाह्निका महापर्व का समय था, किन्नर जाति के देव गान करते थे। देवांगनायें नृत्य करती थीं तथा और देव मृदंगादि बाजे बजाते थे। इन्द्रादिक देव महापूजा करते थे।

चैत्यालय की अद्‌भुत शोभा देख राजकुमार और रत्नसार का मन बड़ा प्रसन्न हुआ। रास्ते की सारी थकावट भूल गया, भक्ति रस से प्रेरित होकर जल्दी से जिन चैत्यालयों में चला गया और क्रमशः देवशास्त्र गुरु को नमस्कार किया, और मित्र के साथ वहीं बैठ गया। वहीं पर पंडप में एक तरफ एक परम सुन्दरी शुभ लक्षणयुक्त कन्या का चित्रपट (फोटो) लगा था। उसे देखते ही राजकुमार चित्रसेन उस पर मोहित हो गया। उसे मूर्छा आ गई, धरती पर गिर पड़ा, बेहोश हो गया। रत्नसार ने शीतोपचार किया, जैसे तैसे उसे होश में लाया। रत्नसार ने राजकुमार से मूर्छा का कारण पूछा। राजकुमार बोला-यह जो सामने चित्रपट लटक रहा है उसमें जिस कन्या का चित्र है वह मेरे दिल में समा गई है। रत्नसार! तुम यह सच समझना कि यदि यह कन्या मुझे मिल गई, यदि मेरा इसके साथ विवाह हो गया तो मेरा जीना हो सकता है अन्यथा नहीं।

यह सुनकर रत्नसार को बड़ी चिन्ता हुई, यह दुःसाध्य मुश्किल, काम

कैसे हो सकता है। न मालूम किसने यह चित्र किस प्रयोजन से बनाया है और यह किसका है तथा यहाँ किस मलतब से लटकाया गया चित्रपट को देखकर यह निश्चय नहीं होता कि यह कोई मनुष्य कन्या है, या देवकन्या, अथवा विद्याधर कुमारी है। इस बात का भी तो पता नहीं कि यह अब तक जीवित है या नहीं।

राजकुमार ने स्पष्ट ही कह दिया कि इसके बिना मैं जी नहीं सकता, क्या करूँ, मेरी तो अक्ल गुम हो गई, बड़ा हैरान हूँ। इस चित्रपट लिखित कन्या का मिलना गधे के सींगों को ढूंढ निकालने, आग का ठंडा करने, पत्थर पर कमल पैदा करने, और आकाश में कुसुम उत्पन्न करने से कम असम्भव नहीं। रत्नसार इसी प्रकार तर्क-वितर्क में उधेड़ बुन में लगा था।

दैवयोग से पुण्य कर्म के उदय से समस्त प्राणियों को आराधनीय, श्रुत केवलज्ञानधारी, अनन्तगुणों के समुद्र, श्रुतसागर नामक मुनिराज का वहीं शुभागमन हुआ। मुनिराज की परम शान्त मुद्रा स्पष्ट कह रही थी कि यह जितेन्द्रिय हैं। बाईस परीषह के सहन करने वाले, शुद्ध चारित्र धारण करने वाले, मूल और उत्तर गुणों का पालन करने वाले हैं, अपने ज्ञानरूपी सूर्य से भव्यजन रूपी कमलों का विकास करने वाले, उन्हें धर्मोपदेश देने वाले हैं।

मुनिराज के अतिशय-उनके पुण्य प्रताप से सूखे वृक्ष लहलहा उठे। हरे-हरे पत्ते, कोंपल, फूल और फल लग आये। रीते तालाब निर्मल जल से भर गये, उनमें कमल खिल गये। परस्पर विरोधी जीवों ने स्वाभाविक वैरभाव छोड़ दिया। केवली महाराज का आगमन सुनकर आस-पास के धर्मामृत पिपासु जन वहाँ आ गये, सभा लग गई, सभा में चित्रसेन राजकुमार और मंत्रीपुत्र रत्नसार भी गया, केवली की सविनय वन्दना करके दोनों बैठ गये। केवली ने धर्मोपदेश रूपी अमृत वर्षा से भव्यरूपी चातकवृन्द को संतृप्त किया। धर्मोपदेश देकर मुनिराज चुप हो गये। रत्नसार ने विनयपूर्वक प्रश्न किया। मुनिराज! यह चित्रपट किसने किस निमित्त बनाया, दया कर इसका सब वृतान्त कहिये।

मुनिराज बोले-वत्स! सुनो, मैं इसका सब वृतान्त कहता हूँ। इसी भरतक्षेत्र

में कांचनपुर नामका एक विशाल नगर है। उसमें चारों वर्ण के लोग निवास करते हैं। उसी नगर में चित्र निर्माण कला में प्रवीण गुणाधर नामका एक चित्रकार रहता है। उसकी स्त्री का नाम है गुणश्री।

वह रूपवती और सौभाग्यवती है। उसके पांच बेटे है ओर वे चित्रविद्या में संसार में प्रसिद्ध हैं। उनके क्रमशः यह नाम हैं-धनदेव धनसार, गुणदेव, गुणाकर और गुणसागर। गुणाधार ने इन पांचों को चित्र निर्माण कला में निपुण बनकर उनका विवाह भी कर दिया था। और सबको बराबर-बराबर सम्पत्ति देकर अलहदा कर दिया था।

इन सब भाइयों में पांचवां गुणसागर सचमुच गुणों का सागर ही था, सब में होशियार था और जैनधर्म का बड़ा अनुरागी था। इसकी स्त्री सत्यवती भी बड़ी मृदुभाषिणी और पतिव्रता थी गुणसागर चित्रकला से लोगों को प्रसन्न करता और सुख से रहता था।

इसी भरतक्षेत्र का एक रत्नपुर नामका नगर है। यह नगर बड़ा ही रमणीय है। इसमें त्रैलोक्यतिलक नामका एक जिन चैत्यालय है, चैत्यालय की शोभा अवर्णनीय है, उसकी दीवालें स्फटिक मणि की हैं, सोने का शिखर और उसमें विविध रत्न जड़े हैं, इस चैत्यालय में श्री शांतिनाथ भगवान की अत्यन्त मनोज्ञ प्रतिमा है। नगर के बाग-बगीचे, सुन्दर-सुन्दर ऊँचे मकान साफ सुथरी गलियों से बड़ी शोभा थी। पद्मरथ नामका राजा इस रत्नपुर में शासन करता था। उसकी रानी का नाम पद्मश्री था। यह रानी पतिव्रता और परम सुन्दरी थी। इस राजा के एक कन्या थी। इस राजकुमारी का नाम पद्मावती था। उस पद्मावती की सुन्दरता में समानता करना संसार भर की सुन्दरियों के लिये मुश्किल काम था। अष्टमी के चन्द्रमा के समान मस्तक, तोते के समान सुडौल नाक, शंख समान कण्ठ, नील कमल के समान नयन, धनुष के समान तिरछी भोहैं, कुन्दरू फल समान अधर, कमल को लज्जित करने वाला मुँह, भ्रमर समान काले काले बाल, चन्द्रमा के समान गोल गाल, कमल नाल के समान भुजा, उन्नत सुडौल स्तन, सिंह समान पतली कमर, गजेन्द्र समान गति, जपा कुसुम के समान लाल लाल पांव के तलुवे, और कोयल की आवाज को मात करने वाला स्वर था। हावभाव में चाल ढाल में अप्सराओं को छकाने वाली

राजकुमारी ने यौवन अवस्था में पदार्पण किया। इसका जिनधर्म में बड़ा अनुराग था, दृढ़ विश्वास था।

उसके देखने मात्र से लोगों का मन कामातुर हो जाता था। वह साक्षात् लक्ष्मी या कामदेवप्रिया रति का अवतार थी। राजकुमारी की यौवन अवस्था देख पद्मरथ महाराज को उसके विवाह की चिन्ता हुई, विचारा कि अब इसे अविवाहित रखना उचित नहीं इसलिये अब इसका किसी योग्य वर के साथ विवाह कर ही देना चाहिये। विद्वान, शूरवीर, कुलीन, सच्चारित्र और जिनधर्म परायण, योग्य वरके मिलने पर पद्मावती के विवाह का निश्चय किया।

राजा योग्य वर की तलाश में रहने लगा, देश देशांतरों से अनेक सुन्दर युवा राजकुमारों के चित्रपट मंगाये, और पद्मावती को दिखाये, पर राजकुमारी को कोई भी राजकुमार पसन्द नहीं आया।

सैकड़ों हजारों चित्रपट दिखाये गये एक पर भी राजकुमारी का चित्त स्थिर नहीं हुआ। प्रत्युत पुरुषों से उसे एक तरह का बैर सा हो गया। वह 'पुंद्वेषिणी' हो गई। कन्या की यह दशा देखकर राजा रानी तथा परिवार के लोगों बड़ा ही पश्चाताप हुआ।

कुछ दिनों के बाद वह गुणसागर चित्रकार प्रियजनों और मित्रों के साथ शान्तिनाथ भगवान की वन्दना के लिये रत्नपुर नगर में आया। शान्तिनाथ भगवान का भक्ति से अभिषेक किया, बाद में पूजा करने लगा। इतने ही में मनुष्य मात्र से द्वेष रखने वाली पद्मावती कुछ सहेलियों को साथ ले, हाथ में तलवार ले, सिंह समान गरजती, लोगों को भय पैदा करती हुई देवदर्शन को लिये चैत्यालय में आई। उसका भयंकर रूप देखकर लोग इधर उधर भागने लगे। क्या है? क्या है? इस तरह का कोलाहल मच गया। सब लोगों को बड़ी शंका हो गई। वे कहने कि यह कोई देवता है, राक्षसी है या दानवी है? क्या है? कुछ समझ में नहीं आता। डरके मारे सब लोग भाग गये पर गुणसागर चित्रकार तो नासादृष्टि लगाये ध्यान में मग्न था, यह सब कोलाहल सुनकर भी ध्यान से विचलित नहीं हुआ। होता ही क्यों, जो जिनेन्द्र के ध्यान में लीन है उसे भय ही किस बात का? जिनेन्द्र ध्यानी को तो यमराज का भी डर नहीं।

ध्यान कर चुकने पर गुणसागर की दृष्टि राजकुमारी पर पड़ी। यद्यपि गुणसागर पवित्र हृदय था पर कन्या के सौंदर्य पर मुग्ध हो गया। ग्रन्थकार कहते हैं कि इन स्त्रियों ने किसके मन को डावांडोल नहीं किया ? ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तक को इन्होंने अछूता नहीं छोड़ा धन्य हैं वे महात्मा जो इनके जाल में नहीं फँसे।

गुणसागर को राजकुमारी का सब वृतान्त मालूम हो गया। उसने विचारा कि राजकुमारी ने पुरुषों से आजन्म वैर ठान अच्छा नहीं किया। कहाँ तो यह महादुर्लभ सौन्दर्य और कहाँ पुरुषों से द्वेष ? छि: छि:! बिना पुरुष के सौंदर्यादि गुणों ही से क्या होता, सब व्यर्थ है। जिस मोती पर पानी ही नहीं वह किस काम का ? सूर्य का यदि उदय ही न हो तो संसार में उसका उपयोग ही क्या ? बिना दीपक के घर में अंधेरा रहता हैं जैसे बिना पुत्र के कुल की शोभा नहीं- वैसे ही बिना भर्तार के सुन्दर युवतियों की शोभा नहीं। गुणसागर इसी विचार में लीन था। राजकुमारी शांतिनाथ भगवान की वन्दना कर राजमहल में चली गई। गुणसागर भी यात्रा कर सपरिवार अपने घर लौट आया। उसी गुणसागर ने उस कन्या का यह हूबहू चित्रपट खींचा है, तथा अपनी चित्रकला का चमत्कार दिखाने के लिये प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों में एक एक चित्रपट लगा दिया। यही सब सच इस चित्रपट का वृत्तांत है।

चित्र-लिखित राजकुमारी का हाल सुनकर राजकुमार फिर भी मूर्छित हो गया। रत्नसार उसे फिर जैसे तैसे होश में लाया। रत्नसार ने फिर भी केवली महाराज से पूछा-मुनिराज! दयाकर यह और बतलाइये कि यह हमारा मित्र इस चित्रपट को देखकर बार बार मूर्छित क्यों हो जाता है ? मुनिराज बोले, सुनो-

इसी भरतक्षेत्र में द्राविड देश है, उसमें चम्पा नामकी बड़ी मनोहर नगरी है। उसी के पास एक परम सुन्दर चम्पक वन है। उस वन में सब ऋतुओं के सर्व प्रकार के फल फूल लगे हैं। उन पर भ्रमण उन्मत्त होकर गुंजार करते हैं, पक्षीगण मधुर शब्द करते हैं, वृक्षों की सघन छाया में पथिकगण विश्राम कर आनन्दित होते हैं, संसार से परम उदासीन मुनिजन वन में ध्यान विमग्न हो दुर्मोच कर्मों का नाश करते हैं।

उस चम्पक वन में निर्मल जल से भरा, बिलकुल गोल, खिले कमलों से शोभित एक तालाब हैं तालाब के किनारे सुन्दर घाट और सुडौल सीड़ियां बनी

हैं, हंस, चकवा, बगुला और सारस वगैरह नाना पक्षीगण का श्रवण सुखद कलरव बड़ा सुहावना मालूम पड़ता है। तालाब के किनारे पर नाना जाति के पेड़ लगे हैं।

एक दिन इसी सरोवर के निकट एक साहूकार व्यापारी बहुत आदमियों को साथ लिये आया और वहीं डेरा डाल दिया, तालाब के शुद्ध जल से नहाकर जिनेन्द्र भगवान की पूजा की, रसोई तैयार की गई, साहूकार तालाब के किनारे पर खडा हो हाथ में शुद्ध जल ले किसी अतिथि की प्रतीक्षा करने लगा। पुण्योदय से मासोपवासी मुनिराज का शुभागमन हुआ, साहूकार ने मुनिराज की पड़गाहना की और नवधाभक्ति से आहार दिया, आहार दान के महात्म्य से पंच आश्चर्य हुये, यह देख लोगों को बड़ा आनन्द हुआ।

आहार दान के समय एक वृक्ष पर हंस हंसिनी बैठे थे, उन्होंने हृदय से मुनि को दिये आहार की अनुमोदना की। ग्रन्थकार कहते हैं कि दान देने से जितना पुण्य होता है दान की अनुमोदना करने से भी उतनी ही पुण्य होता है इसलिये जो श्रावक दान देने में असमर्थ हैं उन्हें शुद्ध हृदय से दान की अनुमोदना करना चाहिये। मुनि को आहार देने से उस साहूकार और हंस दम्पति को बराबर पुण्य हुआ।

आहार लेकर मुनिराज तो विहार कर गये, पर हंस दम्पत्ति उसी पेड़ पर बैठे रहे। हंसनी गर्भवती थी उसने उसी वन में एक विशाल वट-वृक्ष पर पुत्ररत्न उत्पन्न किया। दोनों पति-पत्नि आनन्द से दिन काटते और शिशु पालन करते थे, बहुत दिन इसी तरह सुख भोगते बीत गये, पर उन्हें मालूम नहीं हुए।

उनके अशुभ कर्म के उदय से उस वन में आग लग गई, सारा वन झार-झार जलने लगा, आग की लपटें बढ़ती गई। ठीक वहाँ तक पहुंच गई, जहाँ वह हंस कुल निवास करता था। तब तो हंसनी घबरा कर बोली-प्राणनाथ! जैसे बने बच्चे की रक्षा करनी चाहिये। जाओ, कहीं से पानी ले आओ। जिससे आसपास की आग बुझा कर बच्चों के प्राण बचाऊँ। हंस पानी लाने गया, माता बच्चे के पास रही, हंस को पानी लाने में कुछ देर लगीं। हंस बेचारा आ ही नहीं पाया, और आग बढ़ते-बढ़ते बच्चे के ठीक घोंसले तक

पहुंच गई। बेचारी हंसी विचारने लगी, न मालूम वे कहाँ चल दिये, अभी तक नहीं आये, और वे ऐसी विपदा में आते ही क्यों ? सचमुच पुरुष जाति मौके पर बड़ी पुरुष कठोर हो जाती है। ऐसी हालत में, इस मरणासन्न दशा में, वास्तविक प्रेमशून्य, वह कायर कहीं चल दिया, ऐसे पौरुष को शतवार-सहस्त्रवार धिक्कार है। वास्तव में मनुष्य निर्दयी और निपट निठुर होते हैं, इन पापियों का मुंह भी देखने लायक नहीं, देखते-देखते हंसिनी और उसके बच्चे को जला डाला। सो हे रत्नसार! मुनि के आहार दान की अनुमोदना से हंसिनी ने मानुष भव पाया और वह रत्नपुर नगर में पद्मरथ राजा की रानी के गर्भ से यह पद्मावती कन्या उत्पन्न हुई। और सुनो-

हंस तत्काल पानी लेकर उसके पास आया, उसने अपनी स्त्री और बच्चे को मरा पाया। हंस को दोनों के मरने का बड़ा दुख हुआ, उसने विचारा कि अब संसार में जीना वृथा है, अतिशय शोक के कारण थोड़ी ही देर में हंस भी मर गया। और उस दान की अनुमोदना के फल से वह हंस वीरसेन महाराज का चित्रसेन राजकुमार तुम्हारा मित्र उत्पन्न हुआ। ग्रन्थकार कहते हैं-कि सत्पात्र में दिये दान की अनुमोदना करने से दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति भी सुलभ हो जाती है।

मुनिराज के इस प्रकार वचनों को सुनकर राजकुमार को पूर्वजन्म का जाति-स्मरण हो गया। पूर्वजन्म की सब बाते एक के बाद एक याद आने लगी।

राजकुमार ने मुनिराज के चरण कमलों की हाथ जोड़कर वन्दना की।

ग्रन्थकार कहते हैं कि जैसी होनहार होती है सामग्री भी वैसी ही मिल जाती है। उस वन में साहूकार का आना मुनिराज को दान देना, हंस-हंसिनी का अनुमोदना करना, वन में आग लगना, हंस-हंसिनी का बच्चे का तथा हंस का मरना, हंस-हंसनी का राजकुमार और राजकुमारी होना, उपर्युक्त विषय प्रमाण हैं।

द्वितीय सर्ग समाप्त।

तृतीय सर्ग

राजकुमार ने मुनिराज को प्रणाम कर विनय से कहा–भगवन्! दया कर इतना और बतलाइये कि उस राजकुमारी की प्राप्ति मुझे कैसे होगी? मुनिराज ने कहा–राजकुमार! वह राजकुमारी तो पूर्वजन्म वैर से पुरुषों की निन्दा करती, उनका मुंह भी नहीं देखती। हाँ, स्त्री जाति पर उसकी बड़ी ममता है। उन्हें वह चाहती और बड़ा आदर सत्कार करती है। राजकुमार ने पूछा कि राजकुमारी को पुरुषों से इतना द्वेष क्यों है? मुनिराज ने कहा–सुनो! पूर्वजन्म में जब कि वह हंसिनी थी उसका पति हंस अपने प्यासे बच्चे के लिये पानी लेने गया था। हंस पानी लेकर आ ही नहीं पाया था कि वन में आग लग गई, हंसिनी और उसके बच्चे वहीं तड़फ–तड़फ कर मर गये। उसी समय से हंसिनी को पुरुषों से द्वेष हो गया, और धारणा प्रबल हुई कि इस जन्म में भी और युवा अवस्था प्राप्त होने पर भी पुरुषों का मुंह तक नहीं देखती, वह अभी तक कन्या है, इस बात का उसके माता पिता को बड़ा कष्ट है।

हाँ, इसका एक उपाय है और वह यह कि यदि उसको पूर्वजन्म का सब वृत्तान्त एक चित्रपट पर लिखकर किसी तरह दिखाया जाय तो उसे अवश्य ही जाति स्मरण हो जायेगा, पूर्वजन्म की सब बातें याद आ जायेगी, और वह पुरुषों से द्वेष करना छोड़ देगी, और विवाह करने पर भी राजी हो जायेगी।

इस उपाय को सुनकर चित्रसेन को बड़ी प्रसन्नता हुई। मुनिराज को नमस्कार कर चित्रसेन और रत्नसार दोनों रत्नपुर की ओर चले, मार्ग की प्राकृतिक शोभा देखते हुये दोनों रत्नपुर के निकट पहुंचे। संध्या हो चुकी थी, और दोनों थक भी गये थे। तथा नगर का मुख्य द्वार बन्द भी हो चुका था। इसलिये वे दोनों नगर द्वार के बगल में टिक गये। उस दरवाजे के ऊपर एक रसोईघर था, और उसमें एक धनद नाम का यक्ष रहता था, वह बड़ा सम्पतिशाली था। अनुचर देव और देवाङ्गनाओं से वह हर समय घिरा रहता था। हर एक महीना की कृष्ण चतुर्दशी की रात व्यन्तर जाति के देव धनद यक्ष के पास आया करते थे, आकर गाते बजाते थे, आमोद प्रमोद करते थे, इसी नियमानुसार उस रात

को भी वे आये, संगीत का प्रारम्भ हो गया, मृदङ्ग की ध्वनि गूंज उठी। यह मधुर ध्वनि चित्रसेन के कानों तक पहुंची और उसकी निद्रा भंग हुई। वह जाग उठा, हाथ में तलवार लेकर चला और पास ही में यक्षेन्द्र की सभा को देखा।

सब देव सम्य वेष में बैठे थे, कोई सितार, कोई वीणा और कोई मृदङ्ग बजा रहा था, और कोई मीठी सुरीली आवाज से तान छेड़ रहा था, तथा कोई नाच रहा था, यह सब बातें चित्रसेन दूर खड़ा देख रहा था। वह कौतूहलवश सभा में जा बैठा। कन्दर्प-सुन्दर राजकुमार को देख देवगण आश्चर्य में पड़ गये। एक दूसरे से कहने लगा-क्या, यह कोई देव है या कामदेव है? कुछ समझ में नहीं आता। इतने में ही धनंजय नाम का यक्ष बोला-कोई हो वह हम सब का अतिथि है। सब देवों ने राजकुमार का बड़ा अतिथ्य सत्कार किया। उन सब देवों का नायक धनद यक्षेन्द्र भी राजकुमार को देख बड़ा प्रसन्न हुआ। कुछ मन में विचार कर कहने लगा-राजकुमार! तुम अपनी इच्छानुसार वर मांगो। राजकुमार ने यक्षेन्द्र की बात सुनकर बड़ी नम्रता से कहा-यक्षेन्द्र! आपके दर्शन से आज मेरा जन्म सफल होगा, तुमसे मिलकर मैं अपने को धन्य समझता हूँ। मैं आपके इस शिष्ट व्यवहार से ही सन्तुष्ट हो चुका। मैं अब और वर नहीं चाहता। यक्षेन्द्र भी राजकुमार के विनीत व्यवहार को देख अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अन्त में यक्षेन्द्र ने राजकुमार की इच्छा न रहने पर भी वर दान दिया कि- "संगरे विजयी भव" तुम युद्ध में विजयी होंगे। इस आशीर्वाद को पाकर प्रसन्न हुआ। अपने मित्र रत्नसार के पास लौट आया। उसे जगाकर सब हाल सुनाया। इधर सवेरा भी हो गया था, दोनों वहाँ से चल कर बीच नगर में आ गये। और नगर की दर्शनीय वस्तुओं को देखने लगे। इसी समय पद्मरथ राजा ने राजकुमारी के विवाह के लिये घोषणा-डोंडी पिटवाई कि जो मेरी कन्या का पुरुषों से द्वेष करना मिटा देगा उसी के साथ अपनी राजकुमारी का विवाह करूँगा। और अपना आधा राज्य भी उसको दूंगा। इस घोषणा को सुनकर राजकुमार ने रत्नसार से कहा-मित्र! देखो जैसा मुनिराज से सुना था वही बात हैं। अब मुझे निश्चय होता है कि जिस काम के लियं हम आये है उसमें अवश्य ही सिद्धि प्राप्त होगी। हाँ, तो अब वह चित्रपट तैयार करा लेना चाहिए। ऐसा विचार करके दोनों एक चित्रकार के पास गये। और एक

चित्रपट तैयार कराया, चित्रकार बड़ा चतुर था, उसने पूर्वजन्म की उस घटना को उल्लेख उस चित्रपट में बड़ी खूबी से किया। चित्रपट को लेकर गुप्त वेष बनाकर वे दोनों नगर में गाते हुए घूमने लगे। उनका गाना मधुर तो था ही तो पर उस गाने में उस पूर्वजन्म की घटना के भावों का भी समावेश था।

राजकुमार के इस गानचातुरी की बात रत्नपुर नगर में फैल गई। लोग उसे उसका गाना सुनने के लिये घेरे रहते थे। पद्मावती राजकुमारी ने भी उसकी संगीत कला की प्रशंसा लोगों से सुनी, इससे पद्मावती ने भी उस गायक राजकुमार को देखने की इच्छा की, और उन दोनों को बुलवाया। वे दोनों राजकुमारी के बुलाने पर आये, और वह चित्रपट दिखलाया। उसे देखते ही राजकुमारी को चित्रसेन पर अनुराग हो गया। राजकुमारी की दशा देख उसकी सहेलियां एक दूसरे का मुंह देखने लगीं। उन सबों ने यह निश्चय कर लिया कि यही महापुरुष, हमारी राजकुमारी के पुरुष द्वेष को मिटायेगा।

राजकुमारी ने उस चित्रपट को बड़ी उत्सुकता से देखा। शोभायमान वह वन, प्रफुल्ल कमल संयुक्त वह सरोवर, उसके किनारे, घनी छायावाला अनेक पक्षीगणों का आश्रय, वह वरगद का पेड़ और उसी पेड के नीचे आग में जलकर मरी हुई हंसिनी और उसके बच्चे का होना, चोंच में पानी लाकर हंस का आना, अपने बच्चे और बिचारी हंसिनी का जलकर मरना देख कर शोकातुर हो हंस का प्राण त्याग, यह सब देखकर राजकुमारी के हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। चित्रपट के देखते ही उसे मूर्छा हुई होश आया, एक-एक करके पूर्वजन्म की सब बातें याद आने लगीं। उसको अब निश्चय हो गया कि चित्रसेन राजकुमार पूर्व जन्म का हंस है, मैं हंसिनी हूँ, अपने बच्चे के बिना पानी के आग में जलकर मर जाने से तथा हंस के समय पर न आने के कारण ही पूर्वजन्म की प्रबल वासना से मैं पुरुषों से द्वेष किया करती थी। यह सब बातें राजकुमारी ने अपनी सहेलियों को भी समझाई।

राजकुमार ताड़ गया कि इसे जातिस्मरण हो गया है, सब बाते याद आ गईं। कुछ विचार कर वे दोनों मित्र वहाँ से चल दिये। राजकुमारी ने सहेलियों से बात करने के बाद सामने देखा तो उन दोनों को वहाँ नहीं पाया,

इससे उसे बहुत दुख हुआ। बहुत कुछ पश्चाताप करने के बाद सहेलियों से स्पष्ट कह दिया कि जिस तरह हो, उन राजकुमार को पता लगाना ही होगा। यदि वे मिल गये तो मैं जीवित रह सकूंगी। अन्यथा मेरा मरण समझो। सखियों ने उसे बहुत समझा बुझाकर शांत किया, धीरज बंधाया, उन्होंने कहा-आप निश्चय समझें हम राजकुमार के ढूंढने में किसी बात को उठा न रखेंगी, भरसक चेष्टा करेंगी।

उसी समय सब सहेलियां राजकुमार के पिता महाराज पद्मरथ के पास गई। और पहिले का सब वृतान्त ज्यों का त्यों सुना दिया। सब हाल सुनकर प्रसन्न हुए और उनसे कहा तुम घबड़ाओं मत, हम राजकुमार की खोज कर के अभी बुलाये लेते हैं। पद्मावती को समझाकर धीरज बंधाओ। तत्काल महाराज ने पद्मावती के स्वयंवर में आने के लिये निमन्त्रण दिया। निमन्त्रण पाते ही देश-देशांतरों के राजे, महाराजे, और राजकुमार बड़े ठाटवाट के साथ रत्नपुर में उपस्थित हो गये। इधर पद्मरथ महाराज ने बड़ा ही सुन्दर स्वयंवर मण्डप तैयार कराया। स्वयंवर मण्डप की चारों दिशाओं में चार दरवाजे थे, उनमें माला वन्दनवार लटकते थे। मण्डप के स्फटिक पत्थर के खम्भों में पंच वर्ण के रत्न अपनी निराली छटा दिखाते थे। कहीं मोतियों के और कहीं मूँगों के हार, मण्डप की शोभा को बढ़ा रहे थे। कहीं बेला-चेमली, केतकी और जुही के नव-पुष्पों की सुगन्धि थी, उन पर भौंरे गूंज रहे थे। कहीं पर बनावटी डोगी, मछलियां और चकवा आदि मनको आनन्दित करते थे। कहीं पर रत्नों के अर्धचन्द्र, पूर्णचन्द्र, अर्धसूर्य, के प्रतिबिम्ब और कहीं पर विचित्र रत्न निर्मित नक्षत्र माला शोभायमान थी। कहीं पर एक से एक बढ़िया पताकायें फहरा रही थीं। इस मण्डप की शोभा के सम्बन्ध में इतना कह देना बस होगा कि वह साक्षात् एक देव विमान जैसा सुन्दर बना था। मण्डप में बहुत सी वेदियाँ थीं उन वेदियों पर एक एक सुन्दर मंच-सिंहासन विराजमान था। चारों तरफ अगुरुधूप के घड़े रक्खे थे, जिससे समस्त मण्डप सुगन्धित हो रहा था। अब स्वयंवर का समय हो गया, नियत समय पर राजा, महाराजा, और राजकुमार गण आने लगे। उनसे मण्डप की शोभा देखते ही बनती थी। वे समझे मानों साक्षात् स्वर्ग ही पृथ्वी तल पर आ गया। ग्रन्थकार कहते हैं कि यह सच है कि

अनौखी चीज को देखकर सभी को आश्चर्य होता है। इसी प्रकार शोभा देखते हुए राजागण अपने-अपने सिंहासन पर विराजमान हो गये। मण्डप में कहीं पर संगीत और कहीं पर नृत्य हो रहा था। नाना प्रकार से आगत स्वागत से राजाओं का मनोविनोद किया जा रहा था। इसी अवसर में पद्मावती राजकुमारी के पिता-पद्मरथ ने स्वयंवर मण्डप में एक बड़ा विशाल देवरक्षित धनुष लाकर रख दिया और उपस्थित सभ्यों को लक्ष्य करके कहा-आप सबमें से जो कोई भी इस धनुष को चढ़ायेगा वही इस रूपवती मेरी कन्या का पति होगा!

महाराज पद्मरथ इतना कहकर चुप हो गये। सब राजाओं को अपनी धनुष विद्या का बड़ा गर्व था, कहने लगे-इस साधारण धनुष को चढ़ाने की बात है। राजा गण धनुष चढ़ाने की तैयारी करने लगे। इधर राजकुमारी पद्मावती भी मनोज्ञ वेष धारण कर, सोलह श्रृंगार से सुसज्जित, सुन्दर वस्त्रों को धारण कर सहेलियों के साथ स्वयंवर मंडप में आई। पद्मावती का मुख सुन्दर तो था ही पर होठों पर पान की लाली से उसकी शोभा दूनी हो गई थी। ताजे फूलों की माला पद्मावती के कर कमलों की शोभा बढ़ा रही थी। जब राजकुमारी बीच मण्डप में पहुँची तब धात्री ने पद्मावती को उपस्थित राजाओं का परिचय दिया, देखो राजकुमारी! यह लाट देश के अधिपति है। कितने ही बड़े-बड़े राजा इनके आधीन हैं, यह कर्णाटक देश के स्वामी हैं। जैसे यह रूपवान हैं वैसे ही गुणी भी हैं। इस प्रकार धात्री ने एक एक करके सब राजाओं का परिचय दे दिया, उनका नाम, गुण, प्रताप, और कुल आदि बतलाकर धात्री ने यह भी कह दिया कि राजकुमारी! इन राजाओं में से जो तेजस्वी राजा इस धनुष को चढ़ाये, उसी के गले में वर माला डाल देना। इतना कहकर धात्री चुप हो गई। राजकुमारी भी अपने नियत स्थान पर जा बैठी। अब तो धनुष चढ़ाने की बारी आई।

पहले लाट देश के महाराज साहसकार धनुष की ओर बढ़े, पर वहाँ पहुँचते ही वे दृष्टिहीन-अन्धे हो गये, उन्हें यह भी मालूम नहीं हुआ कि धनुष कहाँ रक्खा है। इनकी वह दशा देख दूसरे राजाओं को हंसी बिना आये न रही। तब तो लाटाधिपति बड़े लज्जित हुये, झेंप के मारे लौटकर अपने आसन पर लौट आये। इनके बाद कर्णदेश के महाराज आये और उन्हें धनुष के पास

बड़ा भारी नागराज दिखाई दिया, मारे डर के यह भी ज्यों के त्यों लौट आये। इसी प्रकार और भी कितने ही राजाओं ने धनुष चढ़ाने का साहस मात्र किया, पर कोई धनुष चढ़ाने में सफल न हुआ। फिर उपस्थित राजा परस्पर में बातें करने लगे कि पद्मरथ का यह धनुष क्या है हम लोगों का साक्षात् यह काल है। हम लोगों के मारने का यह आयोजन तैयारी हैं। कन्या बड़ी ही रूपवती है रहे, ऐसी कन्या को दूर से नमस्कार! इत्यादि बातें कर सब चुप हो गये, सभा में सन्नाटा छा गया। इधर पद्मरथ महाराज यह सब देख बड़े शोकातुर हुए भारी उलझन में पड़े। मन में विचारा कि मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ नहीं जान पड़ता है पद्मावती को अविवाहित ही रहना पड़ेगा। पद्मावती के हृदय में भी गहरी चोट लगी, उसने विचारा मेरे अशुभ कर्म के उदय से स्वयंवर रचना निष्फल हुई।

मेरी आशा निराशा में परिणत हुई, उस प्राणवल्लभ का दर्शन न हुआ, भवितव्य बड़ा प्रबल है। इसी विचार से कन्या चुप मार के रह गई। इस स्वयंवर मण्डप में चित्रसेन राजकुमार अपने मित्र रत्नसार के साथ गुप्त-वेष से बैठे थे। यह सब घटना देख मित्र से बोले-देखा यह तमाशा? किसी का साहस धनुष चढ़ाने का नहीं हुआ, सब राजा खेद-खिन्न हो बैठे हैं। मुझे आशा नहीं कि यह धनुष चढ़ा सकेंगे, अब मेरी इच्छा है कि मैं धनुष चढ़ाऊँ। मुझे आशा है मैं धनुष चढ़ाकर सफलता प्राप्त करूँगा, कार्यसिद्धि अवश्य होगी। रत्नसार ने राजकुमार को प्रोत्साहित किया। राजकुमार धनुष के पास गया। पंचपरमेष्ठी को नमस्कार कर बात की बात में धनुष चढ़ा दिया। धनुष के चढ़ाने से समुद्र के समान भयंकर गर्जना हुई, जीव जन्तुओं में बड़ा कोलाहल मचा। हाथी, घोड़े, गाय, भैंस आदि बन्धन तोड़कर जंगल की ओर भाग निकले, बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। यह सब वृतान्त देख पद्मावती को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने चित्रसेन राजकुमार के गले में वरमाला डाल दी। पर यह बात और राजाओं को अच्छी नहीं लगी। वे कहने लगे-जिसके कुल जाति का कोई पता नहीं, कहाँ का है, कौन है, इसका आचार-विचार कैसा है इन बातों का किसी को पता नही, फिर इसके गले में वरमाला का डाला जाना ठीक नहीं। वास्तव में यह अपरिचित व्यक्ति इस कन्या-रत्न के पाने योग्य नहीं है,

ऐसा विचार कर सब राजा चित्रसेन से लड़ने को तैयार हो गये, रण दुंदुभि बजने लगी, युद्ध घोषणा हो गई। हाथों में हथियार ले लेकर, कोई घोड़े पर, कोई हाथी पर, कोई रथ पर चढ़कर तथा कितने पैदल ही युद्ध भूमि में आ डटे। इस तरफ चित्रसेन और उसका मात्र मित्र रत्नसार था। यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि चित्रसेन को धनद यक्षेन्द्र ने युद्ध में विजयी होने का स्वयं वरदान दिया था। इसलिये रत्नसार के अतिरिक्त चित्रसेन के पक्ष में यक्षेन्द्र या उसका वह वरदान और भी था। उस तरफ बहुत से राजा और उनकी सेना थी, तथापि चित्रसेन निर्भय हो, उस असंख्य वीर वाहिनी के प्रवाह में आ कूदा। इसे देखते ही सब राजाओं ने मिलकर उस पर इतनी बाणवृष्टि की कि जिससे आकाश छा गया, घोर अन्धकार ही अन्धकार चारों तरफ दिखाई देता था। तो भी कोई तलवार, कोई भाले, कोई गदा और कोई परशु प्रहार करते ही जाते थे, बड़ा भयंकर संग्राम मचा। इधर से चित्रसेन भी सिंह समान गरजता हुआ उन सबों पर एक ही वार टूट पड़ा। इसने ऐसा विकट पराक्रम दिखाया कि राजाओं और उनकी सेनाओं के छक्के छूट गये। थोड़ी ही देर में सब लोग मैदान छोड़ तितर वितर हो गए। जिधर से रास्ता पाया उधर ही को भाग निकले। किसी को चित्रसेन का सामना करने का साहस नहीं हुआ। देखते देखते युद्ध-स्थल खाली हो गया। सब राजाओं की हार और चित्रसेन की बड़े महत्व की जीत हुई।

महाराज पद्मरथ भी यह सब खड़े-खडे देख रहे थे, इतने ही में एक भाट ने आकर चित्रसेन की बिरुदावली का वर्णन इस प्रकार किया-

"वसन्तपुर के महाराज वीरसेन के वीर पुत्र युवराज चित्रश्रेणि की जय हो, आपके प्रताप का संसार में विस्तार हो और आपका निर्मल यश फेले।"

भाट के मुंह से चित्रसेन का इस प्रकार परिचय पाकर महाराज पद्मरथ के हर्ष की सीमा न रही। महाराज ने सब राजाओं को इकट्ठा किया और सब की सभा की तथा भरी सभा में युवराज चित्रसेन का सब को परिचय दिया तब तो सब राजाओं को दांत तले अंगुली दबानी पड़ी। उन्होंने कहाँ-सच है, क्षत्रियों को छोड़कर ऐसा बल-पराक्रम और हो ही कहाँ सकता है। राजाओं को अपने किये पर बड़ा पश्चाताप हुआ, पर उसके परिचय से राजाओं को भी कम

प्रसन्नता न हुई। युवराज को बड़ी आदर की दृष्टि से देखा और अपने अपराधों की क्षमा मांगी। इस घटना से पद्मरथ को बड़ा आनन्द हुआ। बड़े समारोह के साथ पद्मावती कन्या का चित्रसेन युवराज के साथ विवाह किया। नगर के लोगों को भी बड़ा आनन्द हुआ। सारे नगर में कहीं गाना, कहीं नाच और कहीं बाजों की मनोहर ध्वनि हो रही थी। नगर के सब लोगों को निमन्त्रित किया, बड़े आदर से भोजन कराया और उचित सम्मान किया यथायोग्य भेंट दी। चित्रसेन यवुराज को भी दहेज में हाथी, घोड़े, रथ विविध प्रकार के वस्त्र, सुवर्ण के अलङ्कार और आधा राज्य भी दिया। स्वयंवर में हुये समस्त राजाओं का भी महाराज ने यथोचित सत्कार किया और उनकी विदा की। याचकों को मनमाना दान दिया और उन याचकों ने भी महाराज और वर-कन्या को शुभाशीर्वाद दिये। इस प्रकार विवाह कर्म समाप्त हुआ।

चित्रसेन और पद्मावती का पूर्वजन्म सम्बन्ध तो था ही पर दोनों को जातिस्मरण होने के कारण, दोनों में असाधारण प्रेम हो गया। महाराज ने इनके रहने को एक बड़ा विशाल भवन दिया था, इसी में यह दम्पत्ति रहते थे और संसार के सुखों को अनुभव करते थे। इसी तरह रहते-रहते बहुत दिन बीत गये, पर इन्हें कुछ मालूम ही नहीं पड़ा। रत्नपुर में इनका बड़ा सम्मान होता था। जो देखो वह यही कहता था कि महाराज पद्मरथ के दामाद बड़े ही योग्य और सुशील पुरुष हैं, राज्य के सब लोग उनकी सुख कामना करते थे और शुभ आशीर्वाद दिया करते थे। ग्रन्थकार कहते हैं-हे भव्यों! यह सब पुण्य का फल है। चित्रसेन राजकुमार की पहले क्या दशा थी, जंगल में मारा मारा फिरता था पर उसके पुण्योदय से उसे राजकुमारी और राज्य की प्राप्ति हुई, संसार में उसकी प्रतिष्ठा हुई, इसलिये मनुष्य को हर समय पुण्य कार्य करना चाहिये, हृदय के भावों को उच्च बनाना चाहिये, हृदय में कभी बुरी भावनाओं व वासनाओं को स्थान नहीं देना चाहिये। यही जिनेन्द्र भगवान का पवित्र उपेदश है।

तृतीय सर्ग समाप्त।

चतुर्थ सर्ग

चित्रसेन ने ससुराल में बहुत समय बड़े आनन्द से बिताया। एक दिन वह रात में अकस्मात् जाग पड़ा। और वह इस प्रकार विचार करने लगा- मैं बहुत मजे में हूँ, मेरे पास सब तरह के सुखों की सम्पूर्ण सामग्री है। हाथी घोड़ों की कमी नहीं, धन-सम्पत्ति भी अपार है, राज्य भी, और सब कुछ है, पर मुझे दुख इस बात का है कि यहाँ रहने से मेरे माता-पिता का कुछ नाम नहीं हुआ। कोई उन्हें जानता भी नहीं। यहाँ मेरी प्रसिद्धि श्वसुर के नाम से है। जो कोई भी मुझे जानता है वह यही कहता है-हाँ, वे महाराज पद्मरथ के दामाद हैं। मैं इसे अच्छा नहीं समझता। श्वसुर के नाम से प्रसिद्ध होना, ख्याति लाभ करना नराधमों का काम है। मैं अब यहाँ न रहूंगा, मैं तो अपने पिता के घर जाऊँगा।

इसी प्रकार विचार करते-करते सवेरा हो गया, उसी समय रत्नसार को बुलाया, और कहा-मित्र! अब तो मैं यहाँ न रहूंगा, समर्थ पुरुषों का श्वसुर के घर रहना लज्जा-बड़े शर्म की बात है। यहाँ रहने से मेरे पिता का नाम तो मिट सा ही गया। मेरी प्रतिष्ठा में भी बट्टा लग गया। नीतिकार ने बिलकुल ठीक कहा है कि "उत्तम पुरुष तो अपने गुणों से ही संसार में मान्य होते हैं, लेकिन पिता के नाम से प्रसिद्धि पाने वाले मध्यम श्रेणि में गिने जाते हैं, मामा के नाम से प्रसिद्ध पुरुषों की गणना अधम श्रेणि में और श्वसुर के नाम पर विख्यात् पुरुषों की अधम से भी अधम पुरुषों में भी होती हैं। इसलिये रत्नसार अब यहाँ से चलना होगा। रत्नसार ने कहा-बहुत ठीक। मेरा भी यही मत है। निश्चय किया कि महाराज से आज्ञा लेकर वसन्तपुर चलें। तदनुसार रत्नसार महाराज पद्मरथ के पास गया, और बड़ी नम्रता से कहा-महाराज! हम लोगों को यहाँ रहते बहुत दिन हो गये, माता-पिता और परिवार के लोगों को देखने की उत्कृष्ट अभिलाषा है, आपके अनुग्रह से हम लोगों ने इतने दिन यहाँ रहकर बड़ा आनन्द पाया, कृपा कर अब हमें जाने की आज्ञा दीजिये। यह सुनकर महाराज को दुख तो हुआ पर रत्नसार का कहना समायोचित्त था, दूसरा कोई उपाय नहीं था। महाराज ने रत्नसार के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

चित्रसेन राजकुमार के जाने का दिन निश्चित हो गया। महाराज ने इनकी विदा की बड़ी तैयारी की। हाथी, घोड़े, सोने और रत्नों के अलंकार, बेशकीमती वस्त्र, और अपार धन दिया। विदा करते समय सब परिवार के लोगों के सामने महाराज ने पुत्री को समयोचित शिक्षा दी-बेटी! तुम आज अपनी ससुराल जाती हो, संसार का यह नियम ही ऐसा है, सब कन्याओं को ससुराल जाना ही पड़ता है वहाँ तुम्हारा सबसे पहला काम अपनी सास ससुर की भक्ति और श्रद्धा के साथ सेवा सुश्रुषा करना होगा, गृहस्थी के सब कामकाजों की सम्भाल, अनुचर वर्ग के साथ सद व्यवहार, अपने धर्म में दृढ़ रहना, बड़ों की आज्ञा पालन आदि कामों को सावधानी के साथ करना होगा। हर समय पति को प्रसन्न रखना, दुख सुख में साथी रहना, उनकी हर तरह की आज्ञा पालन करना ही पतिव्रता गृहिणी का कर्तव्य है। इसी से दोनों कुलों का यश बढ़ेगा।

इत्यादि शिक्षा देकर बड़े आदर और सम्मान के साथ राजकुमारी की विदा की। राजकुमार ने अपने बड़े भारी दल बल सहित प्रयाण किया और चलते-चलते एक सघन वन में डेरा डाल दिया। एक बरगद के पेड़ के नीचे राजकुमार के ठहरने की व्यवस्था की गई। सब लोग मार्ग के थके थे, भोजनादि क्रिया कर सो गये, उसी बरगद के पेड़ में गोमुख नाम का एक यक्ष रहता था। उसकी यक्षी का नाम चक्रेश्वरी था। प्रसंगवश चक्रेश्वरी ने यक्ष से पूछा-प्राणनाथ! यह राजकुमार जो इसी पेड़ के नीचे सो रहा है बड़ा धीर, वीर और पुण्यात्मा मालूम पड़ता है। भला यह तो बताओ इसके पिता महाराज वीरसेन इसको राज्य देंगे या नहीं? यक्ष ने विचार कर उत्तर दिया कि यह राजकुमार अपने माता-पिता को छोड़कर चला गया था, तब इसके वियोग से इसकी माता को बड़ा दुख हुआ। इसी के शोक में माता की मृत्यु भी हो गई थी। माता की मृत्यु के बाद महाराज वीरसेन ने अपना दूसरा विवाह कर लिया। इस स्त्री का नाम विमला है उसके एक पुत्र भी है जिसका नाम गुणसेन है। विमला ने अपने सुन्दर रूप से, हाव-भावों से और छलकपट से महाराज को सब तरह से वश में कर लिया है। इस लिये जो कुछ भी विमला कहती है महाराज को जबरन करना पड़ता है। वे सचमुच विमला के हाथ के खिलौने बन गये हैं। विमला को चित्रसेन के चले जाने की बात मालूम थी। इसलिये

उसे सन्देह भी था कि यदि वह कभी आ जायेगा तो महाराज अपना राज्य उसी को देगें। उसी को अपना उत्तराधिकारी बनायेंगे। इसीलिये विमला ने महाराज से पहले ही प्रतिज्ञा करा ली थी, कि आपके बाद राज्य का उत्तराधिकारी गुणसेन होगा।

विमला को इतने ही से संतोष न हुआ। उसे यह भी संदेह था कि प्रजा चित्रसेन का पक्ष करेगी क्योंकि ज्येष्ठ पुत्र तो वही है, इसलिये यहाँ आने पर महाराज को चित्रसेन के मारने पर राजी किया। उसके मारने के चार उपाय रचे गये हैं। घोड़े पर से गिराकर, नगर का दरवाजा गिराकर, या विष के लड्डू खिलकर। यदि इन तीनों उपायों से न मरे तो सर्प से डंसवाकर चित्रसेन के प्राणों का घात करना। यदि चित्रसेन अपने पुण्य के उदय से इन उपायों से बच गया तो वह अवश्य ही सार्वभौमिक राजा का मुकुट अपने मस्तक पर रक्खेगा, इसमें कोई भी संदेह नहीं हैं, लेकिन देखो प्रिय! यह बात किसी से कहना नहीं। जब राजकुमार उस पेड़ के नीचे सो रहा था तब रत्नसार हाथ में तलवार लेकर उसकी रक्षा करता था, और इसी मौके पर उसने यक्ष की वे सब बातें सुनीं, और अपने परम प्रिय मित्र की रक्षा करने में सब तरह से सावधान हो गया। इतने ही में सबेरा हो गया, राजकुमार सोकर बैठा, स्नान भोजन आदि क्रिया कर फिर चलने की तैयारी हो गई और कुछ ही दिनों में राजकुमार अपने दल बल सहित वसन्तपुर के निकट जा पहुँचा।

महाराज वीरसेन को पुत्र के आगमन की खबर मिली, और बड़ी भारी सेना लेकर पुत्र की आगवानी के लिये चला। साथ में वह चपल घोड़ा भी लाया जिस पर बैठाकर चित्रसेन के प्राण लेने की बात की। वसन्तपुर के उपवन में दोनों तरफ की सेनाओं का मिलाप हुआ। चित्रसेन ने पिता को देखकर जल्दी से घोड़े से उतर कर पापी पिता के चरणों में बड़ी विनय से अपना मस्तक रख दिया। पिता ने भी कृत्रिम बनावटी प्रेम से पुत्र को गोदी में लेकर आलिंगन किया। कुछ कुशल पूछी और उसके निकालने का बड़ा पश्चाताप किया। पर पिता के इस शिष्टाचार में माया और कपट था, फरेब और दगाबाजी थी, और पुत्र की जिज्ञासा की प्रबल पापमय वासना और जघन्य कुकर्म की पराकष्ठा थी। भोले चित्रसेन को अपने पिता पर श्रद्धा

और अनुराग था। उसे इन बातों की कुछ भी खबर न थी। शिष्टाचार के बाद पिता ने पुत्र के चढ़ाने के लिये उस घोड़े को दिया। रत्नसार पहले से तैयार था। उसने इस दुष्ट घोड़े को इस सफाई से बदला कि राजा को पता भी नहीं पड़ा। ठीक वैसा ही दूसरा घोड़ा लाकर कुमार के समाने खड़ा कर दिया। कुमार उस पर सवार होकर गाजे-बाजे के साथ आगे बढ़ा। वीरसेन का पहला प्रयत्न निष्फल हुआ। कुमार अब उस नगर के द्वार पर आया जिसे गिराकर इसके मारने का उपाय रचा गया था। ठीक उस दरवाजे के पास आने पर रत्नसार ने घोड़े को एक चाबुक लगाया कि घोड़ा इस सफाई से निकल गया जिससे वह द्वार कुमार पर न गिर सका। इस बार भी कुमार की रक्षा हुई, और वीरसेन का दूसरा उपाय भी निष्फल हुआ। कुमार नगर की शोभा देखता हुआ पद्मावती के साथ राजमहल में गया, उपमाता विमला की विनय से चरण वन्दना की, पद्मावती ने भी वैसा ही किया।

विमला ने दोनों के कुशल समाचार पूछे, और कुमार ने माता के प्रश्नों का यथोचित उतर दिया। यह सब शिष्टाचार हो जाने के बाद राजकुमार पद्मावती के साथ उसी राजमहल में रहने लगा। विमला को इसे मारने की बड़ी चिन्ता थी। उसने विष के लड्डू तैयार कर लिये। एक दिन कुमार को निमन्त्रण कहला भेजा, रत्नसार को भी इस बात का पता लगा। उसने लड्डू ठीक उसी तरह के बनाये। कुमार रत्नसार के साथ विमला के यहाँ भोजन करने गया, भोजन के लिये बैठे, कुमार और रत्नसार विल्कुल पास बैठे, महारानी विमला खुद परोसने को निकलीं। महाराज के थाल में बिना विष के, और कुमार के थाल में विषमय लड्डू परोसे गये।

रत्नसार अपने बनाये लड्डूओं को साथ ले गया था। ज्यों ही विष के लड्डू थाली में आये और महारानी दूसरी चीज को लेने भीतर गई इतने ही में रत्नसार अपने हाथ की सफाई खेल गया-विषमय लड्डूओं को उठाकर उनके स्थान में अच्छे लड्डू रख दिये। यद्यपि यह चाल और किसी ने न देखी पर स्वयं कुमार, रत्नसार के इस हस्तकौशल को ताड़ गया, पर उस समय बुद्धिमानी से चुप रह गया। सब लोगों ने बड़े आनन्द के साथ भोजन किया। भोजन के बाद सबको पान सुपारी दी गई। महारानी ने कुमार, पद्मावती और

रत्नसार का यथोचित सन्मान किया और उनके आने की खुशी भी मनाई। इस शिष्टाचार के बाद सब लोग अपने-अपने स्थान को चले गये। ग्रन्थकार कहते हैं कि पुण्य के उदय से जीवों को दुखदायी सामग्री भी सुख की कारण हो जाती है, सचमुच पुण्यात्मा पुरुषों के लिये हलाहल विष भी अमृत तथा भयङ्कर नाग भी पुष्पमाला हो जाता है।

इधर जब विमला ने देखा कि चित्रसेन ने विष के लड्डू खा लिये पर वह मरा नहीं, विमला को रत्नसार की करामात तो मालूम थी नहीं, उसे राजा पर सन्देह हुआ। उसने समझा, राजा अपने पुत्र से मिल गया, हो न हो, इसने सब भंडाफोड़ कर दिया है, इसी से चित्रसेन किसी तरह बच गया है। खैर, मैं उन दोनों को देख लूंगी। विमला इसी उधेड़बुन में लगी थी, इतने ही में दैवयोग से राजा भी आ पहुँचे, फिर क्या था, विमला की बन आई। महाराज को आड़े हाथों लिया, बुरा भला कहा खूब डाट लगाई। विमला ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया, कि तुम कुमार से मिल गये हो, और मेरे मार्ग में कण्टक बिछा दिये, उसमें बाधा दी।

वास्तव में राजा ने चित्रसेन से कुछ नहीं कहा था। रानी की इस लताड़ता का महाराज पर उल्टा असर पड़ा। अपने पुत्र के साथ किये व्यवहारों का बड़ा पश्चाताप किया। एक दिन रात में पड़े-पड़े महाराज ने विचारा, मैंने विमला के कहने में आकर पुत्र के मारने के उपाय रचकर बडा अनर्थ किया, इस मेरे पौरुष को धिक्कार! शतबार धिक्कार!

सचमुच वे बड़े ही मूर्ख हैं, उनका तीव्र मोहकर्म का उदय है। जो दूसरे के मोह में फंसकर अनर्थ करने पर उतारू हो जाते हैं। खेद, मुझे स्वयं अपनी बुद्धि और करतूतों पर तरस आता है। वास्तव में मोह का जीतना कायरों की सामर्थ्य के बाहर है। हाँ सच्चे धीर ही इस पर विजय प्राप्त करते हैं अब मुझे राज्य से कुछ प्रयोजन नहीं यह घर भी मुझे कारागार जेलखाना जैसा मालूम होता है। स्त्री, पुत्र, मित्र, परिवार यह सब अपने मतलब के साथी है, संसार के बन्धन हैं। यह विमला तो बड़ी ही पापिनी है। मैं अब इसका सम्पर्क ही न करूँगा। सचमुच स्त्रियों के चारित्र को कोई नहीं जान पाता, मन में कुछ और

है, बोलतीं कुछ और ही हैं, पर काम तो इन दोनों से निराले ही हैं व्यर्थ ही लोगों को इन्होंने मायाजाल में फंसा रखा है, इत्यादि विचारों से राजा के हृदय में बड़ा वैराग्य हुआ, संसार और सांसारिक सुखों-सुखाभासों को तुच्छ समझा।

राजा इसी प्रकार के विचारों में लीन था, इसी समय वसन्तपुर के उपवन में महावीर भगवान का शुभागमन हुआ। उनके आने मात्र से छहों ऋतुओं के फल फूल एक साथ उत्पन्न हो गये, सूखे तालाब निर्मल जल से भर गये, उनमें कमल खिल गये, और भी अनेक अतिशय हुये, यह सब देखकर वनपाल ने महावीर भगवान के आगमन की सूचना महाराज वीरसेन को दी। महाराज ने वनपाल को बहुत सा धन दिया और नगर में भगवान की वन्दना करने के लिये घोषणा कराई।

पुरजन और परिवार के लोगों के साथ महाराज ने उपवन को प्रयाण किया और वहाँ जाकर समवसरण में विराजमान महावीर भगवान को देखकर बड़ा हर्षित हुआ, तीन प्रदक्षिणा देकर वन्दना की और मन वचन काय की शुद्धता पूर्वक अष्टद्रव्य से पूजा की, और पूजा करके मनुष्यों के कोठे में बैठ गया। सर्व भाषामयी, समस्त जीवों की हित करने वाली, भगवान की दिव्यध्वनि होने लगी, उसमें यह धर्मोपदेश था कि, यह जीव कर्मों के उदय से चारों गतिओं में परिभ्रमण करता है, इन कर्मों से उद्धार पाने का इनसे छूटने का उपाय धर्म की धारणा है। समस्त प्राणियों पर दया करना ही संक्षेप में धर्म का लक्षण है, वह धर्म दो प्रकार का है-एक मुनि धर्म, दूसरा श्रावक धर्म। पंच महाव्रत, पंच समिति और तीन प्रकार गुप्ति, इस तेरह प्रकार के उत्कृष्ट चारित्र को धारण करना मुनियों का धर्म है, तथा पांच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत, और तीन गुणव्रत इन बारह व्रतों का धारण करना श्रावक का धर्म है, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांचों का सर्वथा त्याग निक्षेप और प्रतिष्ठापन (उत्सर्ग) यह पंच समिति हैं, तथा मन वचन काय का शुद्ध होना तीन गुप्तियां हैं। इस प्रकार पांच महाव्रत, पांच समिति, पांचों इन्द्रियों का वश में करना तथा समता, वन्दना, स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, कार्योत्सर्ग, स्नान त्याग, स्वच्छ भूमि पर शयन, बालों का उखाड़ना, एक बार थोड़ा भोजन, दन्तधावन का त्याग, खड़े-2 आहार लेना, यह 28 मुनियों के मूलगुण हैं तथा 84 लाख

उत्तर गुण हैं इन समस्त गुणों का धारण करना ही मुनियों का धर्म है, और इन्हीं गुणों के धारण करने से समस्त कर्मों का नाश और मुक्ति होती है।

उपरोक्त बारह व्रतों का धारण करना श्रावकों का धर्म है। इन उपरोक्त पंच पापों का एक देश त्याग करना पंच अणुव्रत है। सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग और अतिथि संविभाग यह चार शिक्षाव्रत हैं तथा दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदंडव्रत तीन प्रकार का गुणव्रत है। इनके अतिरिक्त 53 क्रिया 11 प्रतिमा, चार दान आदि बातों का होना भी श्रावक के लिये आवश्यक हैं, लेकिन बिना सम्यग्दर्शन के यह सब व्रत नियमादिक निष्फल हैं, इसलिये सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अवश्य करनी चाहिये। तत्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व हैं। पुण्य और पाप मिलकर इन्हीं को 9 पदार्थ भी कहते हैं।

जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, यह छह द्रव्य हैं, इनमें से काल द्रव्य को छोड़कर बाकी के पांच द्रव्यों को पंचास्तिकाय कहते हैं। इस तरह सात तत्व, नव पदार्थ, षट्द्रव्य और पांच अस्तिकाय, इन 27 तत्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन हैं। इसके आठ अंग हैं–नि:शंकित, नि:कांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, स्थितिकरण, उपगूहन, प्रभावना और वात्सल्य। सम्यग्दर्शन के 25 दोष हैं–तीन मूढ़ता, आठ मद, षट् अनायतन, तथा शंका, आकांक्षा, आदि। इस सम्यग्दर्शन के तीन भेद हैं– औपशमिक,क्षयोपशमिक और क्षायिक। इस प्रकार महावीर भगवान के मुखारविंद से धर्मोपदेश सुनकर महाराज वीरसेन को बड़ा आनन्द हुआ। साथ ही साथ उत्कृट वैराग्य भी हुआ। संसार के विषयों भोगों से इच्छा हट गई। संसार को असार जाना और जिन दीक्षा लेने का दृढ़ संकल्प किया। नगर में लौट कर सब मंत्रियों को बुलाया और अपना विचार उनको सुनाया।

मंत्रियों ने भी जब देखा कि महाराज का दीक्षा लेने का विचार पक्का है, तब यह निश्चय किया गया कि चित्रसेन को राजगद्दी दी जाये और हुआ भी ऐसा ही चित्रसेन का राज्याभिषेक बड़ी धूमधाम से हो गया। राज्याभिषेक के समय राजा महाराजों को महाराज वीरसेन ने समयोचित उपदेश दिया कि अब

मेरा बुढ़ापा है, अन्त समय है, मैं दीक्षित होता हूँ। आज से ही युवराज चित्रसेन को इस साम्राज्य का अधिपति बनाया है मुझे आशा और विश्वास है कि आप सब अब अपनी मार्यादा का उल्लंघन न करेंगे। जैसा मेरे प्रति आप सबका अनुराग, सौहार्द और सहानुभूति थी, ऐसा ही व्यवहार चित्रसेन के साथ भी करेंगे। संक्षेप में इतना कहकर महाराज रनवास में महारानी विमला के पास गये। और सब समाचार सुनाया। महारानी विमला तो पहले ही से संसार से उदास हो चुकी थी। क्योंकि चित्रसेन के राज्यगद्दी पर बैठ जाने से और अपने पुत्र गुणसेन को राज्य न मिलने से उसके चित्त में बड़ा वैराग्य छा गया था। उसने कहा-प्राणनाथ! यदि आप दीक्षा लेते हैं तो मैं भी दीक्षा लूंगी। राज्यादिक का सुख बिना आप से मुझे क्या अच्छा लगेगा? महाराज ने कहा-तुम्हें अभी दीक्षा लेना उचित नहीं हैं। गुणसेन अभी बालक हैं, उसका लालन पालन करो। महारानी बोली-प्राणनाथ! भला-आपके बिना, पुत्र या इन राज्य की विभूतियों से मुझे क्षणमात्र भी सुख हो सकता है? पति के बिना स्त्रियों को संसार में सुख देने वाली कोई भी सामग्री नहीं।

बहुत कुछ समझाने पर भी विमला ने एक न मानी। अन्त में राजा ने भी उसकी बात मान ली, और महावीर भगवान के समवसरण में जाकर महाराज वीरसेन और महारानी विमला ने जिनदीक्षा ले ली, और दुर्धर तप किया। जहाँ तहाँ विहार कर भव्य प्राणियों को धर्मोपदेश दिया।

इधर चित्रसेन अपनी प्रजा का भली भांति पालन करने लगा। रत्नसार को सब मंत्रियों का प्रधान मंत्री बनाया। एक समय रत्नसार ने मन में विचारा कि चित्रसेन के पुण्योदय से इसकी मृत्यु के तीन कारण तो निष्फल हो गये, पर अब भी एक कारण बाकी है, और उसकी मुझे बड़ी चिन्ता है। अस्तु, पुण्य के प्रभाव से सब अच्छा ही होगा। इस प्रकार विचार कर रत्नसार ने महाराज चित्रसेन को उपदेश दिया। आप पुण्य कर्म में सदा लीन रहना क्योंकि इस लोक और परलौक में पुण्य ही सब सुखों का देने वाला है। इस पुण्य से समस्त विघ्न-बाधाओं का नाश और सम्पत्तिओं की प्राप्ति होती है। महाराज ने इस धर्मोपदेश को सुना ही नहीं, इसके अनुसार आचरण भी किया। यह सच है कि धर्मात्मा पुरुषों को धर्मोपदेश बड़ा ही प्रिय होता है, पर

दुष्टों को यह नहीं रुचता। महाराज चित्रसेन और महारानी पद्मावती ने दीन अनाथों को सहायता दी, नवीन जिन मंदिर बनवाये। तथा प्राचीन जीर्ण मंदिरों का उद्धार करवाया, और उन्हें नाना उपकरणों से अलंकृत किया। इन दोनों दम्पत्ति को जिनपूजा, शास्त्र का अभ्यास, पात्रों में दान देना, गुणी पुरुषों में अनुराग करना इत्यादि सद्‌गुणों से बड़ा प्रेम था। रत्नसार में भी यह सब गुण थे। तीनों के स्वभाव एक से थे, इसका कारण परस्पर में प्रेम भी खूब ही था। रत्नसार सच्चा स्वामिभक्त मंत्री था। इसीलिये राज्य की देखभाल तो अच्छी तरह से करता ही था पर चित्रसेन की रक्षा की वह विशेष सावधानी रखता था, पर रात को महाराज के शयनागार में नंगी तलवार लेकर टहला करता था। एक दिन की बात है कि महाराज और महारानी रात को शयनागार में आनन्द से बेसुध सो रहे थे। जिस हिंडोले में दोनों सो रहे थे उसी की सांकल पर नीचे महाराज के पास उतरते हुए काले सांप को रत्नसार ने देखा। रत्नसार को उस यक्ष की बात याद आई। उसने तत्काल ही तलवार से सांप को काट डाला, लहू की कुछ बूंदें महारानी की जांघ पर पड़ गई थीं। इसलिये रत्नसार कपड़े से इन बूदों को पोंछने लगा। इतने में ही महाराज भी जाग पड़े और रत्नसार को महारानी की जांघ पर से लोहू पोंछते देखा। महाराज ने जल्दी से पूछा–रत्नसार! यह क्या बात है? अब तो रत्नसार बड़ी दुविधा में पड़ा। यदि मैं इस घटना को सुनाता हूँ तो प्रसंगवश वे तीनों बातें, (घोड़े, नगरद्वार और विष के लड्डूओं की) भी सुनानी होंगी तथा ऐसा करने से मैं पत्थर का हो जाऊँगा।

यदि मैं झूठ बोलूँ या कोई बात बनाऊँ तो नहीं मालूम महाराज के मन में क्या ख्याल होगा? राजाओं का विश्वास करना नीति के विरुद्ध है। नीति में लिखा है कि समय पर राजा लोग उपकार, सेवा और पौरुष आदि की कुछ परवाह नहीं करते। बहुत कुछ सोच विचार कर रत्नसार ने निश्चय किया कि जो हो, मैं अपने स्वामी के सामने सब बातें स्पष्ट कहूँगा, अनुकूल और सत्य कहने में कोई बुराई भी नहीं है, नीति का भी यही उपदेश हैं। अन्त में रत्नसार ने कहा–महाराज! यदि मैं इस सम्बन्ध की सब बातें आपको सुना दूँ तो मैं पत्थर का हो जाऊँगा। महाराज बोले– जो कुछ भी हो मैं इसके सम्बन्ध की

सब बातों को सुनुंगा। भला, बात कहने में पत्थर का थोड़े ही हो जाता है? यह सुनकर समझदार रत्नसार ने साहस कर कहा-अच्छा तो सुनिये-महाराज!

जब आप रत्नपुर से पद्मावती महारानी के साथ वसन्तपुर को लौट रहे थे, तब रास्ते में एक वटवृक्ष के नीचे आप ठहरे थे। उसी वृक्ष पर यक्ष और यक्षिणी रहते थे, तुम्हें देखकर यक्षिणी ने यक्ष से पूछा-प्राणनाथ! इस राजकुमार को जो इसके नीचे सो रहा है, इसका पिता राज्य देगा या नहीं? तब यक्ष बोला-सुनो! इस राजकुमार का पिता वीरसेन नई महारानी विमला के वश में हैं, और वह विमला अपने पुत्र गुणसेन को राज्य दिलाना चाहती है। इस बात की विमला ने महाराज से प्रतिज्ञा भी करा ली है। इसीलिये इसको मारने के लिये विमला तथा इसके पिता ने तीन उपाय रचे हैं। अपने पुण्य के उदय से किसी तरह यदि बच गया तो यह राजकुमार अवश्य ही सार्वभौमिक राजा होगा। हाँ, इसकी मृत्यु का एक कारण और भी है वह यह कि सोते समय इसको एक काला सांप काटने आयेगा। यदि इससे भी बच गया तो अपने जीवन को धर्मपूर्वक आनन्द से बितायेगा। लेकिन प्रिये! देखो, यह मंत्री पुत्र रत्नसार इन बातों को सुन रहा है। यदि यह किसी से इन बातों को कहेगा तो यह पत्थर का हो जायेगा। निःसंदेह मैंने यह सब बातें सुनी थीं, पर मैं उसी दिन से आपकी इन आपदाओं को समय समय पर टालता रहा।

आपके पिता जब आपको लेने आये थे, तब वे एक दुष्ट घोड़ी आपके चढ़ाने को लाये थे। मैंने उसे उसी समय बदल दिया। किसी को मालूम ही नहीं पड़ने पाया था। इस बात एक बात के कहते-कहते रत्नसार घुटनों तक पत्थर का हो गया। महाराज चित्रसेन ने कहाँ-हाँ, फिर इससे आगे क्या हुआ?

रत्नसार बोला-जब घोड़े से बच गये तब आप उस नगरद्वार के पास आये, जिसे गिराकर आपके प्राणों के लेने का विचार था। वहाँ पर भी मैंने आपकी रक्षा की। घोड़े को एक तेज चाबुक मार कर उस दरवाजे से ऐसी फुर्ति से निकाल दिया कि आप बाल-बाल बच गये। इस बात को कहते-कहते रत्नसार कमर तक पत्थर का हो गया। महाराज चित्रसेन ने फिर भी कहा-'हाँ रत्नसार! फिर आगे क्या हुआ?

रत्नसार बोला–महाराज! इसके बाद विष के लड्डूओं की बात है और यह बात तो आपको भी मालूम है। जब आपकी उपमाता विमला ने आपके थाल में विष के लड्डू परोसे थे और मैने सफाई से बदल दिये थे। महाराज बोले–हाँ, यह बात मुझे याद है। इस बात को समाप्त करते–करते रत्नसार गले तक पत्थर का हो चुका था। महाराज ने फिर भी आगे कहने को कहा और रत्नसार इस प्रकार कहने लगा:–

महाराज! जब आज रात को आप और महारानी पद्मावती झूले के पलंग पर सो रहे थे, उसी समय झूले की सांकल पर से एक काला भुजङ्ग आपके पास उतरा चला आ रहा था। मुझे उस यक्ष की बात याद आई। मैंने सोचा–यह नीचे उतर कर अवश्य ही आपको डस लेगा। इसलिये मैंने वहीं उसे तलवार से काट डाला। महारानी की जांघ पर कुछ लोहू की बूंदे गिर गई थीं और मैं उन्हें एक कपड़े से पोंछ रहा था, इसी बीच में आप भी जाग पड़े थे। बस यही मेरा सब वृतान्त है। इतना कहने के बाद रत्नसार सर्वांग पाषाणमय हो गया और जमीन पर गिर गया। यक्ष ने जो बात कहीं थी, वह सत्य हुई। महाराज चित्रसेन से प्रिय मित्र रत्नसार की यह आफत देखी न गई! उसकी निश्चल स्वामीभक्ति और अलौकिक गुणों को याद कर महाराज को बड़ी मर्म वेदना हुई। महाराज भी बेहोश हो जमीन पर गिर गये। महारानी ने जल्दी से शीतोपचार किया। थोड़ी देर में महाराज सचेत हो गये और उन्होंने बड़ा विलाप किया।

हा! प्रिय मित्र !! तुम्हारे समान परम बन्धु संसार में कोई नहीं है, मुझ जैसा अधम और कृतघ्न भी संसार में दूसरा न होगा। चार बार तुमने मेरे प्राणों की रक्षा की, विदेश में मेरा साथ दिया। अनेक कष्ट उठाये, मेरे लिये तुमने सब कुछ किया पर मैंने तुम्हें उन उपकारों का यह बदला दिया!!! सचमुच! समय पर बुद्धि में भी फर्क पड़ जाता है। मैंने अपनी मूर्खता से तुम्हें पत्थर का बना दिया। तुम्हारे बिना यह राज्य मुझे शून्य मालूम पड़ता है। आज मेरा जीना भी व्यर्थ है। मैं भी तुम्हारा साथ दूंगा। यदि तुम इस पाषाणत्व का परित्याग कर मुझ से फिर न मिले तो मैं भी प्राण छोड़ता हूँ। क्योंकि तुम्हारे वियोग का दुख मैं सह नहीं सकता।

इत्यादि विचार कर चित्रसेन ने आत्मघात करने का पक्का निश्चय कर लिया और आत्मघात करने का कोई उपाय ढूंढने लगा। महारानी पद्मावती बड़ी दूरदर्शिनी समझदार थी। महाराज के अभिप्राय को वह ताड़ गई। अवसर देखकर उसने महाराज को समझाया। प्राणनाथ! मैं जानती हूँ कि रत्नसार के वियोग से आपके हृदय में भारी चोट लगी है, पर आपने जो आत्मघात करना विचारा है, यह ठीक नहीं। इससे अपवाद-अपकीर्ति फैलेगी, आपकी कीर्ति में बट्टा लगेगा। आप घबड़ाहट छोड़िये, शांतचित हो विचार कीजिये। आत्मघात करना पुरुषोचित कार्य नहीं है, फिर आप जैसे धीरवीर नरनाथ को ऐसा करना सर्वथा अनुचित ही है। आत्मघात करने से मित्र-मिलन न होगा। मैं जो उपाय बताती हूँ वह कीजिये, रत्नसार का प्राणान्त नहीं हुआ। उस यक्ष के श्राप से ही उसकी ऐसी दशा हुई है।

आप एक काम कीजिये। दानशाला मे दान देने की व्यवस्था कीजिये और जितने याचक आयें उनको मनमाना दान दीजिये। इस दान को सुन दूर-देशान्तरों से नाना प्रकार के आदमी आयेंगे। सम्भव है उनमें कोई ऐसा तंत्र मंत्र जादू टोंना जानने वाला साधु-सन्यासी आ जाये जो इस रत्नसार की दशा सुधार दें। महाराज ने पद्मावती का कहना मान लिया और वह याचकों को मनमाना दान देने लगा। दूर-दूर से हर तरह के याचक आये, पर रत्नसार की दशा किसी से सुधरी नहीं। और भी अनेक उपाय किये गये पर किसी में भी सफलता नहीं हुई, तब वे दोनों बड़े हतोत्साहित हुये।

महाराज की चिंता दिनोंदिन बढ़ने लगी। नृत्य गीतादि से मनोविनोद करना तो दूर रहा, राज्य का सब कामकाज करना एकदम छोड़ दिया। निरन्तर रत्नसार के विषय में चिन्तित रहने लगा। एक समय महाराज चित्रसेन ने विचारा, हो न हो जिस यक्ष ने मेरी उन चार आपत्तियों के विषय में भविष्यावाणी कही थी, बहुत संभव है वही यक्ष रत्नसार की इस आपत्ति के निस्तार का उपाय बतलाये। इसी सोच विचार में रात बीत गई। सवेरा होते ही राज्य का काम मंत्री को सौंप कर शुभ मुहूर्त में उस वटवृक्ष की ओर चला जिस में वह यक्ष रहता था। अपने जाने का वृतान्त पद्मावती से भी कहता गया था। कुछ ही दिनों में वटवृक्ष के पास पहुंच गया। रास्ते का थका तो था ही, आते ही उसके नीचे सो गया।

उस यक्षणी ने फिर पूछा–प्राणनाथ! यह कौन पुरुष है जो इस वृक्ष की छाया में सो रहा है? वह बोला–प्रिये! तुम इसे नहीं जानती, यह वही राजकुमार है जो उस दिन अपनी प्रिय पत्नी और रत्नसार के साथ यहाँ ठहरा था। यक्षिणी ने कहा–स्वामी! यह दुखी क्यों है? यक्ष बोला– प्रिये! यह अपने प्रिय मित्र रत्नसार के वियोग से अत्यन्त दुखी है। यह सुनकर यक्षिणी ने वियोग का कारण पूछा और यक्ष इस प्रकार कहने लगा–

प्रिये! तुम्हें याद होगा, इसी के विषय में तुमने पहले भी पूछा था। कि इसका पिता इसको राज्य देगा या नहीं। तब मैंने कहा था कि इस चित्रसेन की मृत्यु के चार कारण हैं, जिन्हें मैं पहिले कह चुका हूँ। यदि उन चार कारणों से इसकी मृत्यु न हुई तो यह सार्वभौमिक राजा होगा। इन सब बातों को इसका मित्र रत्नसार सुन रहा था। तब मैंने यह भी कहा था कि यह रत्नसार इन सब बातों को सुन रहा है। यदि यह इन बातों को किसी को कहेगा तो यह पत्थर का हो जायेगा। रत्नसार के उद्योग से तथा चित्रसेन के पुण्य के उदय से चित्रसेन की मृत्यु के चारों कारण टल गये, पर विवश होकर रत्नसार इन सब बातों को महाराज चित्रसेन को बताना पड़ा और उसी समय से रत्नसार पत्थर का हो गया। तभी से यह चित्रसेन मित्र वियोग से विकल है। संसार में स्नेह ही सब आपदाओं का कारण है। मित्र के स्नेह से ही यह चित्रसेन इधर उधर भटकता है, मारा मारा फिरता है।

यह कथा सुनकर यक्षिणी को बड़ी दया आई, वह बोली, प्राणनाथ! कृपा कर शीघ्र बतलाइये! रत्नसार की इस आपत्ति का कोई प्रतिकार भी है? यक्ष ने थोड़ी देर तक मन में विचार कर कहा–प्रिय! हाँ, इसका एक उपाय है, यदि कोई पतिव्रता नारी अपने बच्चे को गोद में लेकर रत्नसार के पत्थर के सम्पूर्ण शरीर का स्पर्श करे तो अवश्य ही रत्नसार फिर ज्यों का त्यों हो जायेगा–वह पत्थर का न रहेगा। चित्रसेन ने पेड़ के नीचे पड़े–पड़े यक्ष यक्षिणी का यह संवाद बड़े ध्यान से सुना–उसे आनन्द हुआ। अपने मित्र के दर्शन का उपाय उसे मिल गया। रातभर उसी पेड़ के नीचे सुख की नींद सोया। सबेरा होते ही अपने नगर की ओर चला और कुछ ही दिनों में वह वसन्तपुर आ पहुंचा। अपने स्वामी के आ जाने से राज्यभर में आनन्द छा

गया। पद्मावती महारानी को भी पतिदर्शन से अपार आनन्द हुआ। महारानी गर्भवती थी, प्रसव के दिन भी बहुत ही थोड़े बाकी थे, इससे महाराज चित्रसेन को भी बड़ी प्रसन्नता हुई। महाराज ने धीरे-धीरे राज्य का काम काज करना प्रारम्भ कर दिया, नित्यप्रति खूब दान देते, सदा धर्म में लीन रहते और अच्छे-अच्छे कामों में अपना समय बिताते थे कुछ दिनों बाद शुभ मुर्हूत में महारानी के गर्भ से एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। पुत्र जन्म की खुशी में बड़े-बड़े उत्सव महाराज ने कराये। जिन मंदिरों में महापूजा करवाई। याचकों को मनमाना दान दिया, नगर की सौभाग्यवती स्त्रियों को नाना प्रकार के वस्त्र और अलंकार दिये। नगरभर के सब नरनारियों का निमंत्रण कर उन्हें बड़े सन्मान से भोजन कराया। भोजन के बाद सब लोग राजभवन में उपस्थित हुये। पुत्र का नामकरण का विचार किया गया। सब लोगों ने निश्चय किया कि पुत्र की प्राप्ति धर्म के प्रभाव में हुई है। इसलिये इसका नाम धर्मसेन होना चाहिये। सबकी सम्मति से उसका नाम धर्मसेन ही रक्खा गया।

इस दिन भी महाराज ने बड़ा उत्सव मनाया, दानशालाओं में जा कर बहुत सा दान दिया। इसी समय महाराज ने पद्मावती से यक्ष की वह सब कथा सुनाई। और कहा-अब तुम पुत्रवती भी हो, आज तुम्हारे शील की परीक्षा होगी। यदि तुम सच्ची पतिव्रता होगी तो यह हमारा परमप्रिय मित्र रत्नसार तुम्हारे स्पर्श से अच्छा हो जायेगा। पद्मावती ने कहा-प्राणेश्वर! मैं अपने शील की परीक्षा देने को हर तरह और हर समय तैयार हूँ। यह सुन महाराज ने इस घटना को देखने के लिये सब नगर में घोषणा करा दी। बात की बात में नगर के सब लोग आ पहुंचे। सब लोगों के आ जाने पर एक ऊँचे स्थान पर खड़े होकर महाराज ने सब उपस्थित लोगों को रत्नसार की वह पाषाण मूर्ति दिखलाई। यह रत्नसार किस तरह पाषाणमय हो गया, इस बात को महाराज ने आदि से लेकर अन्त ज्यों का त्यों कह दी, तब तो लोगों के मन में बड़ा ही कौतूहल हुआ। फिर महाराज ने पद्मावती से कहा-अब समय आ गया है, सब लोगों के सामने अपने शील की परीक्षा दो।

महारानी तो पहले से ही तैयार थी इतनी बात सुनते ही महारानी पहले जिन मंदिर में गई, स्नान कर स्वच्छ वस्त्र धारण कर शुद्ध मन, वचन, काय से

जिनेन्द्र भगवान की पूजा की। बाद में सभा में आई, धर्मसेन पुत्र को गोदी में लेकर महारानी रत्नसार की उस पाषाण मूर्ति के पास खड़ी हो गई। उनमें श्रद्धा और भक्ति से जिनेन्द्र भगवान का स्मरण किया। और फिर उच्च स्वर में कहा–शासन देवता! इस क्षेत्र के रक्षक क्षेत्रपाल!! और समस्त वैमानिक देव!!! आप मेरे इस नम्रनिवेदन को सुनें! मैं यदि सच्ची पतिव्रता हूँ, मन, वचन, काय से यदि मैंने पर पुरुष पर दृष्टि नहीं डाली हो, और यदि मेरा शील निर्दोष हो तो मेरे हाथ के स्पर्श मात्र से यह पाषाण मूर्ति रत्नसार हो जाये!!!

इतना कहकर पद्मावती महारानी ने उस पाषाण मूर्ति को हाथ लगाया, हाथ लगाते ही वह पाषाण मूर्ति रत्नसार के रूप में बदल गई। यह देख उपस्थित लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सब ने मिलकर कहा–वास्तव में हमारी महारानी पतिव्रता हैं, यह नारी नहीं साक्षात् देवी हैं। लोगों ने शील की बड़ी महिमा गाई। उन्होंने कहा–शील के समान संसार में और कोई उत्कृष्ट वस्तु नहीं। इसके प्रभाव से कठिन से कठिन रोग भी दूर हो जाते हैं, काला सांप माला हो जाता हैं। अधिक क्या कहा जाये, इस शील के प्रभाव से ही स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। सीता का निर्मल यश इसी शील के प्रभाव से हुआ था। यह भी तो शील ही का प्रभाव है जो एक पाषाण मूर्ति से रत्नसार बन गया। मेघकुमार, जयकुमार, सुदर्शन सेठ, और नारद आदि के चरितों में भी शील के ज्वलन्त उदाहरण पुराणों में पाये जाते हैं। वास्तव में शील ही सबसे बढ़कर धर्म है, शील ही तप है, और शील ही व्रत है। इस शील के पालन करने से ही दोनों लोक सुखमय होते हैं। वे पुरुष धन्य हैं, उनका मनुष्य जन्म पाना सफल है, वे देव और देवेन्द्रों को मान्य हैं, जिन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण किया है। समस्त प्राणियों को उचित है कि वे निर्दोष शीलव्रत को धारण करें। तीनों लोकों में शील के समान और कोई पुण्य नहीं है।

चतुर्थ सर्ग समाप्त।

पंचम सर्ग

महाराज चित्रसेन को रत्नसार मिल गया, पत्थर का शरीर छोड़ते ही रत्नसार को महाराज ने गले लगाया। अपने किये पर बहुत पश्चाताप किया। रत्नसार के मिलने से और पुत्ररत्न प्राप्ति होने से महाराज के आनन्द का पार नहीं रहा। महाराज और रत्नसार ने राज्य का काम संभाला, दीन दुखियों की रक्षा का प्रबन्ध किया। तथा धूर्त, बदमाश और अत्याचारी-प्रजा पीड़कों का दमन किया। धर्म की प्रभावना की, गरीब और अनाथों के पालन-पोषण की व्यवस्था की, दान का अच्छा प्रबन्ध किया। इन सब बातों की महाराज चित्रसेन और रत्नसार मंत्री का दूर-दूर तक यश फैल गया। इस प्रकार महाराज और महारानी तथा रत्नसार तीनों राजकाज संभालते तथा धर्म में लीन रहकर अपने दिन आनन्द से बिताते थे।

एक दिन महाराज मंत्रिवर्ग और अपने सामन्तों के साथ दरबार में बैठे थे। इतने ही में एक दूत ने प्रणाम कर निवेदन किया-महाराज! सिंहपुर के महाराज सिंहशेखर ने प्रजा में बड़ा कोलाहल मचाया है। वे अपने करद राजा हैं, जब से आप राजगद्दी पर बैठे हैं उन्होंने तभी से कर नहीं दिया। तिस पर भी कभी-कभी अपने राज्य की सीमा में आकर उपद्रव मचाते हैं, लूटपाट करते हैं, अपनी प्रजा के लोगों को तंग करते हैं। सच तो यह है कि उन्हें अपनी सेना का बड़ा घमण्ड है। इसी पर इन्होनें इतनी उछलकूद मचा रक्खी है। इसलिये इसका कोई उपाय जल्दी होना चाहिये! इनके मुहँ से इतनी बात के सुनते ही महाराज का मुंह लाल पड़ गया। क्रोध के मारे वदन थर्राने लगा।

थोड़ी देर मंत्रियों से सलाह कर रण-दुंदुभि बजवाई, बात की बात में सेना तैयार हो गई। महाराज ने सुभटों को समयोचित साहसवर्द्धक उपदेश दिया। और असंख्य हाथी, घोड़े, रथ और सैनिकों की चतुरंग सेना लेकर सिंहपुर की तरफ प्रयाण कर दिया। आगे-आगे रण के बाजे बजते थे, जिन से योद्धाओं का साहस दुगुना होता था। चारणगत महाराज की विरुदावली का वर्णन करते जाते थे। इसी तरह चलते-चलते कुछ दिनों में महाराज का कटक दल दण्डक वन में पहुंचा, और महाराज ने वहीं पड़ाव डाल दिया। आधी रात का

समय था, सब लोग नींद ले रहे थे। पर महाराज चित्रसेन उस समय भी जाग रहे थे, उस भीषण वन में एक तरफ से किसी के आर्त-शब्द सिसकने की आवाज आ रही थी। महाराज ने विचारा इस निर्जन वन में यह आवाज किसकी है? मैं इसका पता लगाऊँगा। ऐसा विचार कर हाथ में तलवार लेकर उस तरफ चला, जिस तरफ से आवाज आ रही थी। कुछ ही दूर चलकर एक पेड़ से रस्सियों से बंधे एक आदमी को देखा, मारे पीड़ा के वह सिसक रहा था, महाराज ने उसके सुन्दर रूप को देखकर मन में विचारा यह कोई देव या दानव हैं?

इतना मन में विचार कर महाराज ने उससे पूछा-भद्र! तुम कौन हो, तुम्हारा नाम क्या है और तुम्हारी यह दशा क्यों हुई? वह आदमी बोला-महाभाग! मेरी कथा बड़ी आश्चर्यमयी है, पर पहले आप मुझे इस बन्धन से छुड़ा दीजिये। मुझको बड़ी पीड़ा है, फिर मैं आपको सब वृत्तान्त सुनाऊँगा! इसके दीन वचन सुनकर महाराज ने तलवार से उसकी रस्सियां काट डालीं। अब वह कुछ स्वस्थ हुआ और बोला-महाराज! अब मेरी कथा सुनिये! रूपाचल के वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणि में हेमपुर नाम का नगर है, वहाँ का राजा हेमरथ है, महारानी का नाम हेमलता है, इसी हेमलता के गर्भ से मैं उत्पन्न हुआ हूँ, और मेरा नाम हेममाली है। मैं अपनी स्त्री के साथ अपने घर आनन्द से रहता था।

एक दिन मेरे मन में तीर्थयात्रा करने का विचार आया, अष्टाह्निका महापर्व के दिन थे। इन्हीं दिनों यात्रा का विचार कर स्त्री को साथ लेकर विमान में बैठकर तीर्थक्षेत्रों की वन्दना कर इस दंडक वन में आया था। पीछे से रत्नचूड़ नामका विद्याधर अपने मित्रों के साथ यहाँ आया, उसका विचार पापमय था, उसकी कुदृष्टि मेरी स्त्री पर लगी थी, इसीलिये उस निर्दय ने मुझे यहाँ बांध दिया और मेरी प्यारी स्त्री को लेकर कहीं भाग गया! उसकी बातों को सुनकर महाराज को उस पर बड़ी दया आई। रस्सी के द्वारा बांधे जाने के कारण हेममाली के बदन में गढ़े पड़ गये थे, उनसे लोहू चू रहा था। दया से प्रेरित हो महाराज ने उसकी मरमपट्टी की। हेममाली ने हाथ जोड़कर विनय से कहा-दीनबन्धो! जिस तरह आपने मुझे इस बन्धन से छुड़ाया , उसी तरह उस पापी से मेरी प्राण-वल्लभा स्त्री को भी दिलवा दें! पेड़ में जिस तरह फूल

और फलादिक सब परोपकार के लिए होते हैं उसी तरह सज्जन पुरुषों का तन, मन और धन परोपकारार्थ होता है। आपकी सहायता से मेरा कार्य सिद्ध होगा इसकी मुझे पूर्ण आशा है। महाराज ने उसके नम्र निवेदन को सुनकर कहा-अच्छा मैं तुम्हारी स्त्री के ढूंढने का प्रयत्न करता हूँ। ऐसा कहकर उसी हेममाली के विमान में उसी के साथ बैठकर वन की ओर चला। थोड़ी ही दूर जाकर देखा कि वहीं रत्नचूड़ विद्याधर की स्त्री तथा विद्याधर के मित्र एक पेड़ के नीचे बैठे हैं।

उन्हें देखते ही महाराज चित्रसेन ने दूर से ही गरजकर कहा-सावधान रे पापिष्ट रत्नचूड़! अगर अब भागा तो बिना मारे न छोड़ूंगा। इस बात के सुनते ही रत्नचूड़ के छक्के छूट गये। उसके साथी विद्याधर तो मारे डर के भाग गये, लेकिन रत्नचूड़ न भागा, और उसने महाराज पर शस्त्र चलाया। उधर से महाराज ने भी बाणों की वर्षा की। थोड़ी देर तक महाराज चित्रसेन का और रत्नचूड़ का घोर युद्ध होता रहा। अन्त में रत्नचूड़ हार गया। और हाथ जोड़कर महाराज के पैरों में गिर गया, तथा कहने लगा-महाराज! मैं कान्तिपुर का युवराज हूँ, मेरा नाम रत्नचूड़ है। मैं विद्या साधने को गंधमादनगिरि पर था। विद्या साधकर अपने मित्रों के साथ पृथिवी की दर्शनीय वस्तुओं के देखने की अभिलाषा से इधर-उधर घूमता था। रास्ते में अपनी स्त्री के साथ हेममाली मिला। उसे देखकर विद्या की परीक्षा के लिये मैंने अपने मित्रों से कहा कि देखो, मैं अपनी विद्या का चमत्कार दिखलाता हूँ, मित्रों ने मुझे उत्साहित किया। और मैंने अपने विद्या बल से हेममाली की स्त्री को बेहोश कर दिया।

मेरी इस करामात को देखकर मेरे मित्रों को बड़ी प्रसन्नता हुई। उनका प्रसन्न होना ठीक भी था। विलक्षण बात देखकर प्रायः सभी प्रसन्न होते है। मैंने हेममाली की स्त्री को केवल विद्या की परीक्षा के लिये और हंसी में ही बेहोश किया था। मेरा कोई और मतलब न था। तौ भी हेममाली ने क्रोध में आकर मुझे बहुत ही बुरी गालियां दीं। वह किसी तरह चुप ही नहीं होता था। तब तो मुझे भी क्रोध आ गया। मैंने उसे पेड़ से बांध दिया, और उसकी स्त्री को लेकर इस वन में चला आया।

मैं हेममाली की स्त्री से पूछ रहा था कि तू कौन है, किसकी लड़की है।

इत्यादि बातें पूछकर मैंने इसे जाने को कहा ही था–इतने में आपकी आवाज आई, जिसको सुनकर मेरे मित्र तो भाग गये और इसके बाद जो कुछ हुआ सो आपको मालूम ही है। मेरा आपसे इतना निवेदन और है कि मैंने पहले से अपने गुरु से ब्रह्मचर्य व्रत ले रक्खा है। मैंने किसी बुरी दृष्टि से हेमामाली की स्त्री का अपहरण नहीं किया था। महाराज ने रत्नचूड़ की सब बातें सुनीं और उसको व्रती जानकर उसकी प्रशंसा की और कहा–संसार में परोपकारी पुरुष धन्य हैं। दीन और अनाथों का भरणपोषण करने वाले भी धन्य हैं, पर वे महात्मा अधिक धन्यवाद के पात्र हैं जो निर्दोष ब्रह्मचर्य व्रत को पालन करते हैं। हेममाली को अपनी स्त्री के मिल जाने से बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने महाराज चित्रसेन से निवेदन किया–महाराज! आपने मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया। आपने मुझे दान दिया और स्त्री को दिलाकर मेरे कुल का उद्धार किया। मैं आपका सदैव के लिये ऋणी हूँ।

महाराज! मैं आपके इस कार्य से बहुत ही प्रसन्न हूँ। कृपाकर आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये, मैं चाहता हूँ कि आप मेरे पास से कोई विद्या ले लें। महाराज ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। फिर हेममाली ने महाराज को एक ऐसा पलंग दिया, जो इच्छित स्थान में ले जा सकता था। तथा एक शत्रुञ्जय नाम का अस्त्र दिया। इस शस्त्र की ऐसी शक्ति थी कि यह जिस पर चलाया जाय उसका अवश्य ही प्राण नाश करता था। इन दोनों चीजों को पाकर महाराज को बड़ी प्रसन्नता हुई। हेममाली की बड़ी प्रशंसा की। इसके बाद रत्नचूड़ विद्याधर ने भी महाराज से निवेदन किया कि महाराज! मेरी भी एक गुटिका को स्वीकार कीजिये। इस गुटिका में यह गुण है कि इसको शरीर से छुआ देने से मन चाहा रूप बन जाता है। रत्नचूड़ के बहुत आग्रह करने पर महाराज ने उसे गुटिका को भी स्वीकार कर लिया।

इसके बाद महाराज ने हेममाली और रत्नचूड़ का मेल करा दिया और दोनों को हँसी खुशी के साथ अपने–अपने घर भेज दिया। सवेरा होते–होते यह दोनों अपने–अपने घर पहुँच गये। महाराज चित्रसेन भी अपने डेरे में आये। सैनिकों को जगाया। सब लोगों के तैयार हो जाने पर आगे चले। चलते–चलते सेना सहित महाराज सिंहपुर की सीमा में पहुँचे।

महाराज चित्रसेन के आने की बात रत्नपुराधीश महाराज सिंहशेखर को मालूम हुई। और उसने दूत के द्वारा महाराज चित्रसेन को कहला भेजा कि यदि तुम अपना भला चाहते हो तो मेरे राज्य की सीमा में पैर मत रखना। महाराज चित्रसेन ने उसी दूत से कहला भेजा कि तू जाकर अपने स्वामी से कहे दे कि तुम हर तरह से तैयार रहो, महाराज चित्रसेन युद्ध करने के लिये तुम्हारी सीमा में आ गये हैं। दूत ने जाकर सब हाल ज्यों का त्यों कह दिया। तब तो सिंहशेखर को भी बड़ा क्रोध आया। उसने जल्दी से अपनी सेना तैयार कराई और मदमाते हाथी की नांई रणभूमि में आ डटा। बात की बात में दोनों तरफ से हथियार ठनकने लगे, रथवाले रथवालों से, और पैदल पैदलों से भिड़ गये। बाणों की वर्षा से आकाश मंडल छा गये। तलवार, भाला, बर्छी और कटारों के प्रहारों से योद्धागण जमीन पर लोटने लगे। किसी का सिर कट गया, किसी का एक हाथ और किसी के दोनों हाथ कट गया, दोनों ओर के अनेकों योद्धा वीर गति को प्राप्त हुये पर दोनों ओर से युद्ध होता ही रहा। कोई पक्ष भी पीछे न हटा। मदमाते हाथियों की तरह दोनों पक्ष के वीर परस्पर में लड़ते थे। बहुत देर तक युद्ध होते रहने पर भी जब सिंहशेखर और उसकी सेना युद्ध में डटी रहीं थी तब महाराज चित्रसेन ने सिंहशेखर और उसके सैनिकों की बड़ी प्रशंसा की। जब महाराज चित्रसेन ने देखा कि सिंहशेखर की सेना पीछे नहीं हटती, साहस बांधे आगे बढ़ी ही चली आ रही है तब महाराज को क्रोध आया, और उसने शत्रुंजय नाम का अस्त्र हाथ में लिया। मन में परमेष्ठी और उस हेममाली का नाम लेकर शत्रु सेना पर वह अस्त्र चलाया। बात की बात में शत्रु की सब सेना अचेत हो जमीन में गिर पड़ी। अकेले सिंहशेखर अपनी सेना की यह दशा देखकर मन में बड़ा चिन्तित हुआ। थोड़ी देर विचार कर घोड़े से उतर कर बड़ी विनय से महाराज चित्रसेन के पास आया। और उनके पैरों में अपना मस्तक रख दिया। और हाथ जोड़कर कहा–महाराज! मैं आपका अपराधी हूँ, जो उचित समझें सो मुझे दण्ड दें। अब तो मैं आपके शरण में आ गया हूँ। महाराज ने अपना वह अस्त्र वापिस खींच लिया और सेना सचेत होकर उठ बैठी। महाराज चित्रसेन ने बड़े आनन्द से सिंहशेखर के साथ सिंहपुर में प्रवेश किया और बड़े समारोह के साथ महाराज सिंहशेखर को फिर से गद्दी पर बैठाया।

उससे पीछे का बाकी सब कर लिया। तथा आगे प्रति वर्ष कर भेजने की प्रतिज्ञा कराई। और बाद में अपनी सब सेना को साथ ले वसंतपुर की ओर प्रयाण किया। रास्ते में अनेक राजा मिले उनसे कर लेते हुये महाराज थोड़े ही दिनों में वसन्तपुर की सीमा में आ पहुंचे। महाराज की आगमनवार्ता रत्नसार मंत्री ने सुनी तो उसने नगर में खूब ही उत्सव कराया। महारानी पद्मावती को भी अपने प्राणनाथ के आगमन से बड़ी प्रसन्नता हुई। मंत्री रत्नसार ने ठाटवाट से महाराज की अगवानी की। नगर के प्रतिष्ठित लोगों ने आगे बढ़कर प्रसन्नता से मंत्री तथा नगर के लोगों से मिले और उनके कुशल समाचार पूछे। रत्नसार मंत्री को अपने पास बैठाकर राज्य का सब समाचार पूछा। रत्नसार ने भी संक्षेप में राज्य की सब कुशल सुनाई। इस प्रकार सब शिष्टाचार हो जाने के बाद महाराज सब लोगों के साथ चले और नगर द्वार में आये। इधर अपने पूज्य पिता की अगवानी करने को युवराज धर्मसेन पहले ही से तैयार खड़ा था नगर द्वार में प्रवेश करते ही धर्मसेन ने पिता को विनय से प्रणाम किया और पिता के पैरों में मस्तक रख दिया। पिता ने बड़े प्रेम से युवराज को उठाकर गोदी में ले लिया और कुशल समाचार पूछा। बाद में बड़े उत्सव के साथ नगर में प्रवेश किया। नाना प्रकार के बाजे बज रहे थे। स्त्रियां मङ्गलगीत गा रहीं थीं। शूरवीर योद्धाओं की प्रशंसा हो रही थी। इसी समय महाराज चित्रसेन राजभवन में आये और सिंहासन पर बैठे।

थोड़ी देर बाद सब लोगों को विदाकर अन्तःपुर (रनवास) में गये। वहाँ महारानी पद्मावती ने महाराज का स्वागत किया। परस्पर में कुशल समाचार पूछे गये। महाराज, महारानी और रत्नसार मंत्री ने याचकों को दान दिया। जिन मंदिरों में जिनेन्द्र भगवान की पूजा की। इन तीनों का अच्छा समागम हुआ। तीनों को जिनधर्म का परम श्रद्धान था। तीनों मिलकर धर्म-कार्य करते थे और राज्य का काम संभालते थे। एक दिन बातों बातों में महाराज ने इच्छित स्थान पर ले जाने वाले, हेममाली के दिये हुये पलंग का जिकर किया, तब महारानी और रत्नसार ने कहा-इस पलंग की परीक्षा करनी चाहिये। यदि सचमुच ऐसा है तो इस पर बैठकर दुर्गम तीर्थस्थानों की वन्दना करनी चाहिये। तथा इसी पर बैठ संसार के देखने योग्य दृश्यों को देखना चाहिये! यह सुनकर

महाराज ने कहा-प्रिये! यह पलंग ठीक ऐसा ही है जैसा मैंने कहा है-इसकी परीक्षा की भी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अभी हाल युद्ध में हेममाली के उस शत्रुंजय अस्त्र की परीक्षा मैं कर ही चुका हूँ। इसलिये इसके विषय में संदेह करने का कोई कारण नहीं हैं अब तो तीर्थयात्रा की तैयारी करनी चाहिये।

यह सुनकर मंत्री ने यात्रोपयोगी सब सामान को उस पलंग पर रखवा दिया। तथा महाराज चित्रसेन ने महारानी पद्मावती, मंत्री रत्नसार, युवराज धर्मसेन और अनेक परिवार के लोगों को उस पलंग पर बैठाकर कैलासगिरि की यात्रा को प्रयाण किया। पलंग आकाश में उड़ने लगा, सब लोगों ने मार्ग की अनुपम शोभा देखी और बड़े प्रसन्न हुये। अब वह पलंग कैलासगिरि पहुंच गया। सब लोगों ने भरत चक्रवर्ती के बनवाये उत्तंग सुवर्णमय जिन चैत्यालयों को देखा। उन चैत्यालयों की पूर्वदिशा में दो, दक्षिण दिशा में चार, पश्चिम दिशा में दश और उत्तर दिशा में आठ रत्नमय जिन प्रतिमायें विराजमान थीं। सबने उन सब प्रतिमाओं की वन्दना की। और अष्टद्रव्य से पूजा का प्रारम्भ किया गया। सब लोगों ने मन, वचन, काय की शुद्धतापूर्वक उन प्रतिमाओं की पूजा की, कैलासगिरि के जिन चैत्यालयों को वन्दनादि करके सभी ने अपने मनुष्य जन्म को सफल माना। ग्रन्थकार कहते हैं कि जिन भगवान की पूजा करने से दोनों लोक सुधरते हैं और कर्मों का नाश होता है। जो प्राणी शुद्ध मन, वचन, काय से जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते हैं, वे परमपद-मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

इसलिये हे भव्यों! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो जिनेन्द्र भगवान की पूजन में मन लगाओ! जिनपूजन का माहात्म्य बहुत बड़ा है। इस प्रकार कैलाशगिरि की यात्रा कर महाराज अपने साथियों के साथ अपने घर लौट आये। सबको उस पलंग की शक्ति का विश्वास हो गया। महाराज, महारानी और रत्नसार ने फिर राजकाज संभाला। महाराज के पुण्य के प्रभाव से उनका यश चारों ओर फैला। अब सब राजा इनके आधीन हो गये। अब न इनका कोई शत्रु था, और न राज्य में किसी प्रकार उपद्रव था। महाराज ने अपने उत्तम गुणों से दूसरे राजाओं और देशभर के विद्वानों के हृदय में स्थान पा लिया, समस्त प्रजा ने इनको एक उत्तम शासक मान लिया, चारों दिशाओं में सूर्य के समान इनका तेज विराजमान था। इन्द्र के समान विपुल विभूति थी, पुत्र और

प्रौत्र थे। महाराज के पुण्योदय से सांसारिक भोगविलास की समग्र सामग्री उपस्थित थी। इस प्रकार सांसारिक सुखों का अनुभव करते तथा धर्मसेवन करते हुये दिन बिताते थे।

एक दिन महाराज चित्रसेन राजसभा (दरबार) में विराजमान थे, उसी समय वनपाल ने आकर महाराज को विनय से प्रणाम किया। और निवेदन किया–महाराज! आपके पुण्योदय से मनोरम उपवन में दमवर नाम के मुनिराज का शुभागमन हुआ है। उनकी भव्य मूर्ति से शांति का साम्राज्य है। वे सांसारिक भोगों से उदासीन, और केवलज्ञान के धारी हैं। उनके आगमन मात्र से परस्पर के विरोधी जीवों ने वैर छोड़ दिया है और शांत भाव से केवली भगवान के पास बैठ गये हैं।

यह समाचार सुनकर उस वनपाल को बहुत से वस्त्र और आभूषण दिये। तथा नगर में मुनिराज की वन्दना के लिये घोषणा करवाई। नगर के सब नर–नारीगण मुनिराज की वंदना के लिये तैयार हो गये। महाराज ने अपने परिवार और उन नागरिकजनों के साथ उपवन की ओर प्रयाण किया। थोड़ी ही देर में महाराज अपने दलबल सहित उन उपवन में पहुंच गये जहाँ दमवर मुनिराज विराजमान थे। महाराज और सब लोग यथास्थान बैठ गये। सब लोगों के बैठ जाने पर मुनिराज ने बड़ी शांति से उत्तमक्षमादि दश धर्मों का उपदेश दिया। संसार की अनित्यता बतलाते हुये बारह भावनाओं का कथन किया। इस धर्मोपदेश का महाराज के हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। संसार के सब विषय तुच्छ मालूम पड़ने लगे। महाराज के हृदय में उत्कट वैराग्य आया। धर्मोपदेश के समाप्त होते ही मुनिराज को नमस्कार कर महाराज चित्रसेन अपने घर आये, और युवराज धर्मसेन को बड़े समारोह के साथ राजगद्दी पर बैठा दिया। रत्नसार मंत्री ने भी अपना पद अपने सुमति नामक पुत्र को दे दिया। इस प्रकार मंत्री भी महाराजा के साथ–साथ दीक्षित होने को तैयार हो गया। महाराज ने समस्त परिजन और स्वजनों को बुलाकर उनसे क्षमा मांगी तथा स्वयं भी सबको क्षमा प्रदान की। मंत्री ने भी ऐसा ही किया। महारानी पद्मावती ने भी दीक्षा लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। इसलिये महारानी ने भी सबसे क्षमा प्रदान की। महाराज और रत्नसार वन में उन्हीं दमवर मुनिराज के पास गये और निवेदन किया–

मुनिराज! हम संसार से उदासीन हैं इसलिये हमें जिनदीक्षा देकर अनुगृहीत कीजिये। मुनिराज ने उनकी सब व्यवस्था पूछकर उन्हें दीक्षा दे दी। दीक्षा के बाद उन दोनों ने घोर तप किया। नाना देशों में विहार कर भव्य प्राणियों को उपदेश दिया।

सो हे श्रेणिक! घोर तप करके वे दोनों अच्युत स्वर्ग में गये और वहाँ से च्युत होकर मनुष्य भव धारण कर मुक्ति प्राप्त करेंगे। महाराज के साथ ही महारानी पद्मावती ने भी दीक्षा ली थी। उन्होंने भी दुर्धर तप कर अच्युत स्वर्ग प्राप्त किया और वहाँ से चयकर मनुष्य भव धारण कर मुक्ति प्राप्त करेगी।

हे राजन्! शील के प्रभाव से इन तीनों ने ऐसे तप उत्तम पद को पाया है। वास्तव में शील के प्रभाव से इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति होती है। आज्ञा पालने वाली स्त्री, पुत्र और पौत्रों की भी प्राप्ति इसी से होती हैं। गौरव, प्रतिष्ठा और निर्मल यश विस्तार को प्राप्त होता है। शील पालन करने वाले मनुष्य को संसार में न आपत्तियों का भय है और न भूत पिशाचादिका । शील के प्रभाव में किसी को भी सन्देह नहीं है। इस शील के पालन करने से परलोक में उत्तम गति तो प्राप्त होती है पर इस लोक में भी समस्त सुखों का अनुभव होता है। इस विषय में चित्रश्रेणि और पद्मावती की यह कथा प्रमाण है जिसका मैंने ऊपर वर्णन किया है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि गौतमस्वामी ने श्रेणिक महाराज से शील के सम्बन्ध में चित्रसेन और पद्मावती की कथा का मनोरंजक वर्णन किया। इस कथा को सुनकर समस्त सभा के लोगों को असीम हर्ष हुआ। और सबने शीलधर्म पालन करने का संकल्प किया।

पंचम सर्ग समाप्त।

ग्रन्थ समाप्ति